आधुनिक गुजराती कहानियाँ

रामाकृष्णा
(प्रकाशक एव वितरक)
बीकानेर

आधुनिक गुजराती कहानियाँ

अनुवाद एवं सम्पादन-

जेठमल

जेठमल

प्रकाशक

रामकृष्णा

(प्रकाशक एवं वितरक)

धोबीधारा सूरसागर

बीकानेर-334001

संस्करण 1990

मूल्य पैंतीस रुपये मात्र

आवरण

स्वामी अमित

मुद्रक

विकास आर्ट प्रिंटर्स

रामनगर शाहदरा, दिल्ली-32

AADHUNIK GUJRATEE KAHANIYAN

(Story Collection)

Transleted & Edited

by

JETHMAL

Price Rs 35 00

भूमिका

गुजराती कहानी पर अपनी एक टिप्पणी म गुजराती के कथाकार व आलोचक आविद सुरती ने लिखा है कि वैसे गुजराती कहानी का इतिहास दखा जाए तो हमे हैरानी होती है। जहा विश्वसाहित्य मे कहानी का जन्म हुआ उन्नीसवी सदी के आरम्भ म वहा गुजराती कहानी ठीक एक सदी पिछडी हुई है। इस सदी के प्रथम दशक के आसपास लिखी गयी स्व० रणजीतराम वावाभाई मेहता की रचना "हीरा" को एक स्वतन्त्र कहानी कहा जा सकता है या नही, इस विषय मे आज भी गुजरात के साहित्य महारथी सहमत नही। पर सन् 1918 मे प्रकाशित स्व० मलयानिल की रचना "गोवालगी" का गुजराती कहानी के प्रथम प्रयोग रूप म स्वीकार किया जाता है। कुछ गुजराती विद्वान अवालाल करलाल देसाई के लिखित कहानी "शातिदास' (1900) को प्रथम जराती कहानी मानते है। मलयानिल स चलकर क० मा० मुशी, रमणलाल दसाइ, रामनारायण वि० पाठक, धूमकेतु, जयती दलाल, जयत खत्री, उमाशकर जाशी, चुनीलाल मडिया सुदरम गुलाबदास ब्राकर तक आते आत गुजराती कहानी ने कलात्मक कहानी का रूप धारण कर लिया। 1957 मे सुरेश जोशी का प्रथम कहानी सग्रह 'गह प्रवश प्रकाशित हुआ और इसके साथ ही गुजराती कहानी क क्षेत्र मे आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ। इस सग्रह ने गुजरात के कहानी सजका और आलाचको की सजन विषयक धारणा जड़मूल से बदल डाली। सुरश जोशी न अपने सजन एव विवेचन द्वारा गुजराती कहानी का नई दिशा दी। इतना ही नहा, नई कहानी के स्वरूप का गुजराती म प्रस्थापित या। कहानी म जो नये तत्त्व इन्होने प्रतिष्ठित किये सक्षेप म वे है—

घटनातत्त्व का लोप (विषयवस्तु का नहीं, रूपबंध का महत्त्व), अतश्चेतना के व्यापारों का चित्रण, शिल्पगत व भाषा की नई संभावनाएं तथा प्रतीक रचना। उनकी रचनाओं में दुर्बोधता और बोझिलता का आधिक्य है। "गृह प्रवेश", 'बीजी थोडीक', "अपित्व" तथा "न तत्र सूर्यो भाति" इनके कहानी संग्रहों में उत्कृष्ट कहानियां हैं। आज की गुजराती कहानी की समीक्षा करते समय किशोर जादव का उल्लेख किये बिना शायद ही आगे बढ़ा जा सकता है। प्रौढ़ लेखक आलोचक गुलाबदास ब्रोकर ने इन्हें "नवीनों में भी नवीन" की संज्ञा दी है। आधुनिकतम कहानीकार जादव को इनके कहानी संग्रह, "प्रागतिहासिक अने शोक सभा" तथा "सूर्योपनिषद" प्रकाशित होने पर आधुनिक गुजराती कथा साहित्य से सुरेश जोशी के पश्चात दूसरा प्रतिमान माना गया है। नागालैंड में बसने वाले इस गुजराती कथाकार की कहानियां प्रथम दृष्टि में असंगत, असंबद्ध, एब्सर्ड, अवास्तविक, कपोल कल्पित सी लगती हैं। जादव फैंटेसी या ड्रीम रियलिटीज का यथावत निरूपण करते हैं और बाह्यत: बेसिर-पैर की सी कहानियां सर्जित करते हैं परन्तु इन कहानियों में सजग पाठक जिस आंतरिक वास्तविकता का दर्शन करता है, उससे जीवन के एक नये ही आयाम से पर्दा उठता है। चन्द्रकान्त बक्षी की कहानियों में अस्तित्ववादी अर्थहीनता को सूक्ष्म दृष्टि से मानवीय सहानुभूति के साथ बड़े संवेदक और गहन रूप में प्रस्तुत किया गया है। गुलाबदास ब्रोकर, मधुराय, श्रीमती सरोज पाठक, वर्षा अडालजा, ज्योतिष जानी, ईव डेव, राधेश्याम शर्मा, सुधीर दलाल, विभूत शाह, हीरालाल फोफलिया, रोहित पंड्या, रघुवीर चौधरी, भगवती कुमार ह० शर्मा, हरीन्द्र दवे, घनश्याम देसाई, दिनकर जोशी, शशि शाह श्रीमती कुंदनिका कापडिया, वसुबेन भट्ट, अमैसिंह परमार और ललित कुमार बक्षी इन दिनों अच्छी गुजराती कहानियां लिख रहे हैं।

—जेठमल

क्रम

मौत के क्षण में

गुलाबदास ब्रोकर

उठकर मुह साफ किया। शौचादि से निपटकर व्यायाम कर लिया। अब बढिया काफी का कप पीते पीते अखबार पर नजर डाल लू तो घूमने जाऊ, पकज ने सोचा। समुद्र तट पर मिलने वाले मित्रो की याद ने एक मधुर लहर उसके समग्र शरीर मे बरपा दी। उस लहर से प्रभावित हो वह मृदु मुस्कान और प्रसन्न बदन अखबार लेकर बरामदे मे गया। काफी का कप उसके पीछे-पीछे तुरन्त ही पत्नी लेकर पहुच गयी।

बरामदे के खम्भे का सहारा ले अपनी मन पसन्द जगह पर पकज बैठ गया। अखबार खोला, ट्रे म से कप लिया, सामने की सडक पर और उस सडक के पीछे के हवाई अड्डे के मदान पर रोज की आदत के अनुसार एक नजर उसने डाल ली और आखो को अखबार म और मुह को कप म डुबाया।

पर वह डूबा न डूबा तभी सामने आकाश मे कोई प्रचड आवाज हो रही हो, एसा लगा। क्या होगा ? इधर-उधर, सामने देखा। कुछ विशेष ध्यान म नही आया। पुन आखो को और मुह को नियत जगह पर डुबाने को ही था कि तभी फिर से जैसे एक साथ बहुत सारी तोपें गरज रही हो, ऐसी आवाज आने लगी।

उसकी अवगणना की जा सके यह सभव न था। पकज ने कप नीचे रख दिया। अखबार का एक ओर रखकर पकज ने देखा। आवाजें तो चालू ही थी और सामने विमान के उड़ान भरने उतरने की जो हवाई

पटरी थी उस रास्ते पर, ऊपर आकाश मे से, ठीक सामने, जुहू के समुद्र-किनारे की ओर से एक राक्षस नीचे उतर रहा हो ऐसा लगता था। उसका सिर नीचे धप रहा था। और कुछ ऊपर की ओर उठी हुई उसकी पूछ अग्नि ध्वजा को जैसे हवा मे फहरा रही हो इस तरह अगारे उडा रही थी। गति निश्चित और एक सी थी—पकज की दिशा की ओर।

एक क्षण तक तो पकज की समझ म कुछ नही आया। क्या होगा यह सब ? वह अनिमेष बौखल की तरह देखता रहा। पर क्षणेक ही। दूसरे ही क्षण जैसे उसके दिमाक के सारे ही रास्त खुल गये। उसम प्रकाश नहा, समझ प्रकटी। यह सामने से बढ आता, पूछ से आग उगलता कोई मायावी राक्षस न था पर यह तो माग भटका हुआ और नियत्रण खो चुका हुआ कोई विमान था, और ये धूम धडाके उसके गाफिलपन के ही सूचक थे।

'दुघटना, उसके दिमाग म एक शब्द कौधा और वह उठ खडा हुआ। भीतर दौडा—चीखता "भागो, भागो, विमान टूटा लगता है सामन।"

किचन म चाय-नाश्ता करती पत्नी घबरायी हुई दौड आई और पास के कमरे म से पुत्रवधू। "क्या है ? कहा है ? कैसी दुघटना ? हाय हाय!" समझ म आत न आत अनेक स्खलित शब्द प्रवाह सुनाई दिये। दोनो के चेहरे भी अच्छी तरह दीखे। एक वद्ध, घबराया हुआ, दूसरा युवा, व्यग्र। एक के वस्त्र फटेहाल लगते थे। दूसरे के बाल अस्त-व्यस्त उड रहे थे। दोनो चेहरे दौडन को उत्सुक थे—बाहर की ओर, जिधर स वह राक्षस दौडा आ रहा था उस दिशा मे।

पकज ने दोनो को बाह से पकडकर उलटे घुमा दिया "वहा नही, वहा न जाना। वहा तो मौत दौडी आ रही है।'

'तो ?" किंचित रुआसी आवाज पत्नी की

'अब ?' वसी ही रुआसी आवाज पुत्रवधू की।

'इस ओर, इस सामने की ओर, दौड जायें, उसस विपरीत दिशा मे। वह यहा तक आय उसस पहले निकल जायें।'

'पर कसे ? सब आ गये ?" पत्नी दौड सके ऐसी न थी पर दौडने का डौल करने लगी।

"सब आ जायेंगे, पर तुम तो दौडो, तुम्हीं पीछे रह जाओगी।"

"आप भी " कहते हुए वह आगे बढी।

"तुम इसका हाथ पकडकर दौडो दर्खे।" पकज ने पुत्रवधू से कहा। तभी वे दोना पिछली आर, ड्राइग रूम म से बाहर निकल गई।

पकज ने पीछे गदन घुमाकर देखा। वह राक्षस बहुत नीचे आ गया था। अब तुरन्त ही वह जमीन का छू लेगा। उससे पहले और वह भी दौडा, सामने की ओर, बाहर।

दूसरी आर आवाजें हो रही थी। मनुष्या के परो की, मुहो की, रुकते हुए वाहना की।

"अत्र मरे, दौडा।" पकज ने कहा, और वह दौडा, पीछे की ओर। वे दानो भी यही कर रही थी और पीछे तो दीवार थी—दूसरे बगले की, ऊची-ऊची, तीना म से एक भी लाघ न सके ऐसी। यह दखते जानते हुए भी तीना उस ओर बढ रहे थे—आवग, मात्र आवेग था। चिंतन न था, समझ न थी।

पर एकाएक ही पकज के पैर थम गये।

"विजय ?" उसने जार स आवाज लगायी।

पत्नी मुडी, "विजय कहा ? कहती, 'हाय हाय।"

"तुम दोना आग बढा, मैं विजय को लाता हू।" वह वापिस लौटा। दौडा था उतनी ही तेजी स।

विजय के कमरे की ओर वह बढा। जवान बेटा नीद म सोया था अभी तक, जस हमेशा की रात और हमेशा की सुबह सो रहा हो। उसके चेहरे पर भय चिता कुछ न था। नीद की, आराम की मधुर रेखाए ही उसके चेहरे पर फली हुई थी।

'विजय " आवाज दी थी वह सिसकी सी सुनाई पडी। पानी-घर की आड से हाती नजर गयी तो दखा कि पत्नी विजय को झकझोर रही थी, एक आर से पुत्रवधू दूसरी ओर से।

'जल्दी उठिये, दुघटना हुई है। पुत्रवधू कह रही थी।

"उठ न बटा, जल्दी, मेरा जी मथा जा रहा है।" पकज की पत्नी कह रही था।

"मौत दौडती आ रही है, विजय ! उठ, दौड, जल्दी।"

"क्या है ? कौन ? कहा है ?" कहता विजय हक्का बक्का सा उठ खडा हुआ। वह जैसे किसी को पहचानता ही न था। उसे कुछ समझाने की जरूरत समझे बगैर पत्नी ने और पुत्रवधू ने अपने एक एक हाथ से विजय को पकडा और लगी दौडने। उनके असमान पैर जितनी असमान गति एकत्रित कर सके, उस गति से।

पकज ने उन दौड रहे पुतला की ओर एक नजर डाली। ऐसे समय भी उसके चेहरे पर एक समझ मे न आ सके ऐसी मुस्कान फैली हुई थी, और वह भी दौडा।

ड्राइंग रूम मे आ, सामने की दिशा मे दौड जाने से पहले एक नजर उसने पीछे की ओर डाली। विमान दौड रहा था अब हवाई पटरी पर, परतु उसकी आग बुझ गयी थी। और लोग दौड रहे थे—रास्ते पर, चारो आर से—उस विमान की दिशा म।

वह क्या कर रहा है यह उसकी समझ म नही आया, और वह भी विमान की ही दिशा मे बाहर कम्पाउण्ड मे दौडा—जोर जोर से चीखता

"वहा उस ओर नही, इधर सामने की ओर दौडो। वह आएगा, वह टूटेगा तब "

और स्वय फिर दौडता हुआ गया—पुत्र, पुत्रवधू और पत्नी जिधर दौडे जा रहे थे उधर।

पर वहा तो कोई रास्ता ही न था। केवल दीवार थी, ऊची ऊची और न लाधी जा सके एसी।

"अब ?"

"दौडो वापिस सामने, और बाहर निकल जाओ। बाइ ओर दौडने लगना। वह आएगा तो सीधा आएगा। हमारे घर पर। उससे पहले निकला जा सके तो " सब आशकित थे।—"बाहर निकल जाए।"

दौडने लगे। अब चारा। इस बार पुत्र और पुत्रवधू मा को दोनो हाथो से पकड कर दौडा रहे थे।

बाहर आये तो देखा वहा तो आदमी ही आदमी थे। सब विमान की

ओर ही दौड रहे थे और विमान, अभी तक उसका इंजन पूरी तरह बन्द न होने के कारण सास खाता हो इस तरह कीचड मे आधा खुप कर हाफता-हाफता खडा रह गया था।

"दौडो मत अब, यह तो खडा है।" विजय ने कहा।

पकज ने देखा। हा, वह खडा ही था। और आग ओकता न था। राक्षस पराजित हो गया था, और उसके चक्का को, कर्ण के रथ के चक्को की तरह, धरती निगल गई थी। उसके और सडक के बीच बनी खाई ने उसे आधा चौथाई टेढा कर दिया था और बरसात के कारण से इकटठे हुए कीचड न उसे चारो ओर से जकड लिया था।

चारो थम गये। क्षणेक। पर फिर उन्हे भी सडक पर दौड रहे लोगो की छूत लगी हो ऐसा लगा। चारो उस विमान की दिशा मे दोडने लगे।

पर अब जी को अपने अस्तित्व का जैसे भान होने लगा। चारेक कदम दौडकर पुत्रवधू ठिठककर खडी रह गयी। "मुझे नही चलना। कैसी लगती हू मै?"

"फूहड जैसी।" विजय हँसा।

"फूहड-सी तो मैं लगती हू।" उसकी मा भी हँसी और वापिस मुड गयी। वहा घर खुला पडा है और मैं यहा दौड-भाग कर रही हू।"

"हा, मा, चलिए चलिए!" कहकर पुत्रवधू भी उसके साथ हो ली। दोनो घर की ओर रवाना हुई। उन्हे विजय देखता रहा। फिर वह भी कुछ कहे बिना उनके पीछे-पीछे हो लिया।

पकज सडक के सामने, सडक की ओर हवाई अडडे का अलग करती छोटी दीवार के पास पहुचा। वहा छोटी दीवार मे अब सकरा रास्ता बन चुका था। और कुछ लोग भीतर घुसने का प्रयत्न कर रहे थे। अब विमान से बाहर निकलने का दरवाजा खुल गया था। और यात्री भीतर से नीचे कूद रहे थे। कीचड मे धस चुकी हुई विमान की ऊचाई ने इस काम को उनके लिए सरल बना दिया था।

अब भय न था, कर्त्तव्य था—इन सारे यात्रियो को कुछ देर आश्रय देने का।

सबसे पास घर पकज का ही था। यात्री कूद-कूद कर नीचे उतरते

थे। स्त्रिया और पुरुष, बालक और वृद्ध सभी। विमान का जापानी कप्तान जमीन पर खडा-खडा उन्हे नीचे कूदते उतरते देख रहा था।

देखने काबिल सजे-सवरे थे वे लोग। पर किसी के चेहरे पर भय था और किसी के चेहरे पर बेचैनी। निराश्रितता तो कइयो के चेहरो पर छायी हुई थी, और लाचारी भी।

कुछ साथी एकत्रित कर पकज उस कप्तान के पास पहुचा। "ले जाऊ इन्हे वहा सामने, मेरे घर? कुछ स्वस्थ करूगा तब तक आपकी भी कुछ व्यवस्था हो जाएगी।'

कप्तान कुछ क्षण ताकता रहा। जरा अकुलाया भी। फिर निर्णय कर लिया हो इस तरह कहा

"हा, अवश्य, इतनी देर म मुझे भी सब-कुछ ठीक-ठाक करने का समय मिल जायगा।" फिर पूछा "कौन-सा है आपका घर?"

"यह सामने ही है, वह!" पकज ने सकेत कर बताया।

"ओह, वह!' किंचित विषाद की रेखाए उसकी आखो म फैल आईं। "यह भी पूरा जलकर राख हो गया होता, यह न रुका होता तो।" फिर जैसे गुप्त बात कह रहा हो इस तरह पकज के कधे पर हाथ रखकर कहा

"इसकी टकी म तीन हजार लीटर पट्रोल था!"

यह तीन हजार लीटर पैट्रोल क्या-क्या कर सकता है इसकी गिनती भी, फिर तो सबको ले जाने, सभालने की धमाल मे याद न रही। बहुत सारे यात्री खुश-खुश हो पकज के साथ गये। समूह के रूप म। एक यूरोपियन भाई के पैर म थोडी चोट-सी आ गई थी। बाकी के बहुत से घबरा गये थे। झटके खा गये थे, हतप्रभ हो गये थे। उन्हे स्वस्थ करना सहज था। पर इस भाई ने कहा 'थोडी सी ब्राडी मुझे मिल जाए तो मैं अभी स्वस्थ हो जाऊ।"

"इस एक चीज के सिवा अन्य कुछ भी आप मागें तो मैं अभी ला दू।" पकज ने हसकर जवाब दिया।

'यह भी ला देता हू, तुरन्त।" एक भाई ने चुटकी बजाकर समूह मे से तेज आवाज मे कहा और वह तुरन्त ही दौडने लगा।

सारा वातावरण मत्रीभाव था, अतराष्ट्रीय सदभाव का हो गया था। धीरे-धीरे सभी म स्वस्थता आती गई। मलेशिया की एक यात्री वहन कहने लगी "मैं तो कभी भी जापान के विमान मे नही बैठती। पर मेरे पति हागकाग म चल बसे थे और मैं मुई यूरोप म थी, यह एक ही फ्लाइट मिलनी सभव थी, इसीलिए मैं इसम बैठी।"

"आपके पति के पास यह आपको जरूर पहुचा देता। बदनसीबी कि बच गइ।" किसी ने कहा। और सब लोग हस पडे—यात्री भी और वह बहन स्वय भी।

केवल एक युवती नही हसी और न ही बोली।

एक कोन म वह खिन्न सी हुई खडी थी। और अभी तक भी काँप रही थी। उसके चेहरे पर केवल आघात नवकाशित था। उसका पति उसकी कमर म हाथ डालकर उसे धैय वधाता लग रहा था, पर उसकी सवेदना मे कुछ प्रभाव लगता न था।

पकज उसके पास गया, कहा

"अव क्यो घबराती हैं? अव तो आप ठोस जमीन पर हैं।"

कुछ भी न समझती हो इस तरह वह पकज के सामने देखती रही।

"कहा जा रहे थे?" पकज ने पूछा।

वह क्यो जवाब दने लगी? पति ने कहा

"हैदराबाद।"

"ओह! वहा ता आप शाम को पहुच जाएगे।" उस युवती की ओर वह फिर मुखातिव हुआ, "बहन, अव तनिक भी मत घबराइए, यह बम्बई है। और यह आपका ही घर है। अव किसी को कुछ भी हाने वाला नही।"

पर वह तो न हिली-डुली और न चली, न हसी और न बोली।

"बेचारी को वहुत शॉक लग गया है।" किसी ने कहा।

'शॉक कैसे नही लगता, मौत को नजर के समक्ष देखा जो है?"

"हा, यह तो सही है।" किसी ने कहा, फिर यह कहने वाला पकज की ओर घूमा

"पकज भाई, यहां हमारे बीच इतनी बातें हुईं उनसे यह तो तय है कि

आप ही इस विमान को सुलगते हुए और आपके घर की ओर बढते हुए देखने वाले पहले आदमी थे।"

"हा, सभवत ऐसा ही हुआ होगा।" पकज ने कहा।

"आपने अपन बेटे से कहा मौत दौडती आ रही है। उठ, दौड, जल्दी।"

"हा, लगभग ऐसा ही कहा था मैंने।'

"तो उस मौत का नजर के समक्ष, आपकी ओर बढ आते हुए देखा। आपको कैसा कैसा लगा था, पकज भाई ?"

पकज विचार मे पड गया। कैसा कैसा लगा था स्वय को ?

लगना तो बहुत कुछ था उसने सोचा समूचा विगत जीवन एक क्षण म उसके सामने साक्षात हो जाना चाहिए था। उसके पाप और पुण्य, कम और अकम, सारे ही एक गठरी बनकर उसके सामने उस एक क्षण म क्रमश तादृश्य हो जान चाहिए थे। करने योग्य न कर पाने की, शेष रह जाने की एक असह्य वेदना सवेदना मे तडफडा उठनी चाहिए थी।

पर ऐसा कुछ महसूसा हुआ पकज को याद नही आया।

उसके हृदय के एक कोने म हमेशा के लिए सजोई हुई, और किसी भी महत्त्वपूण क्षण म अचानक उस कोन मे से बाहर आ सम्पूण हृदय म फल फैन जाने वाली स्वगस्थ मा भी उस क्षण उसे याद आई हो ऐसा उसे नही लगा। स्वय जिसे अपनी मृत्यु के समय अपने निकट खडी देख ले तो वह मृत्यु भी आनददायक बन जाय ऐसा वह मानता था। वह अपनी प्रिय मित्र भी उस क्षण उसे याद आई हो ऐसा उसे नही लगा। न भाई, न बहन, न स्वजन, न मित्र, न शेक्सपीयर, न हैमिग्वे, स्वय जिनका नित्य रटन करता था वह कोई या कुछ, और जिनम श्रद्धा न रहने पर भी जो प्रतिक्षण अपना नाम उसके हृदय मे गूजता रखते थे, और रात को सोते समय और सुबह उठते समय अचूक वह नाम अपने मुख से उच्चारित करता था वे भगवान महावीर भी उस क्षण उसके निकट फटके हो ऐसा उसे लगा न था।

तो फिर खुद को लगा क्या था ? पकज जवाब खोज रहा था और जवाब मिलता न था। वह पूछने वाला पुन पूछ रहा था

"तब, उस क्षण, आपको क्या कैसा लगा था, पकज भाई ?"

'कुछ लगा हो ऐसा याद नही आता।" क्षण भर चुप रहकर उसने कहा।

"तो ?"

"केवल एक आवेग आया था।"

"कसा ?"

'उसमे से भाग छूटने का और मेरे अपने सभी को भगाने का।"

"बस इतना ही ?"

'हा, उस समय तो इतना ही। अब कहो तो उसमे बहुत कुछ जोडा जा सकता है।"

"पर तो फिर ये ?" उसने उस युवती की ओर सिर घुमाया।

'ये मूढ हो गयी हैं, और खडी है। मैं मूढ होकर दौड रहा था।"

"पर तो फिर मौत "

"नजर के समक्ष आती है तो वह आदमी को मूढ कर देती होगी, शायद।' पकज हँसा।

'और फिर ?" वह व्यक्ति भी हँसा।

'फिर आदमी उसकी प्राथना कविता करता होगा, शाति के क्षणो म, चेतना प्राप्त करने के बाद।"

तभी यात्रियो को लेने के लिए विमान कम्पनी के कमचारी आ पहुचे और पकज उन सबको विदा करने मे लग गया।

सामने, मूढ हो चुका और कीचड म धसा हुआ विमान उसके सामने ताकता रहा। □

४

धड

भगवतीकुमार ह शर्मा

किसी खडखडाहट से मेरी आखें खुल गईं। कमरे म चट्टान सा नीम-अधेरा था। चेचक के चेहरे वाली अनु शायद जाग गई होगी। रीमा यानी रोने से सूजी हुई आखें एव सदीप का मतलब बहता नाक। और ये आखें तथा नाक अभी सुपुप्त अथवा जाग्रत थे ? रीमा की परीक्षा शुरू हो रही थी, नही ? सदीप कौन सी कक्षा म पढता था, ठीक से याद नहीं है। अनु का खाली, सलवटो भरा उसके चेहरे जैसा बिस्तर मेरे नजदीक था, लगता था जैसे सूखी रेत पर से केकडा गुजर गया। मेरी आखा म खुमार था और शरीर मे थकान। अगडाई लेत हुए मैं बिस्तर पर से उठ खडा हुआ। धीरे धीरे कमरा टटोलने लगा, बिना पीठ की कुर्सी दरका हुआ आईना मैंने एक खिडकी खोली। सागर की लहरो की तरह प्रकाश भीतर घुस आया। कमरा अब तेज का अबार और अधिक अजीब लगता था। मैं तेजी से वाश-बेसिन के पास गया। अधे आदमी की तरह अभ्यास के बल से पेस्ट और ब्रश लिया। ब्रश वाला हाथ मुह की तरफ ले जाकर मैंने बेसिन के धुधले आईने की ओर देखा। कुछ भी असाधारण नहीं—इस खयाल से मैंने ब्रश और आगे बढाया तभी मैं आईने के और अधिक निकट गया। ब्रश वाला मेरा हाथ, जैसे लकवा हो गया हो या थम गया। मैंने आखें पटपटाईं तो मुझे लगा कि आईने मे का मैं था वैसा ही रहा—बिना चेहरे का। मेरे खिचडी जसे बिखरे हुए बाल, सकरा ललाट, घनी भौंह, गहरी धसी हुई पीली आखें उनके नीचे के काले घेरे, अनगढ नाक, मोटे-सूखे दरारा वाले

हाठ, एक आगे निकला और टूटा हुआ दात, लम्ब कान और उनके ऊपर इक्के दुक्के बाल, झुरिया वाले गाल, गड्ढेदार ठोडी, बढी हुई दाढी—सारा, मारा ही आईने मे से, टिड्डीदल के आ पडने से नुच जाते खेत की तरह सफाचट हो गया था और बची थी केवल मेरी धड—उजाड सिवान के आखिरी पेड के सूखे तने जैसी। भौंथरी गदन बैला के जुए सी झुके हुए कधा पर दिखाई देती मली वनियान की पट्टिया, छाती के सफेद बालो के झखाड, गले मे तावीज। मैंने जोर से सास खीची और छोडी। मुझे कुछ बू आई—बिना साफ सफाई किए रसोईघर की, रसोई मे से खनखनाहट सुनाई दी—कप-रकाबियो की, और मेरे कटे हुए प्रतिबिंब को सहेजता आईना मरे सामने था, तो मेरे कान, आख, नाक ?

मैं नीद म खरड खरड नाक बजाता लेटा था। कोई दु स्वप्न या कोई फरेब—हा-हा, ऐसा ही कुछ होना चाहिए। तो फिर ये मेरे हाथ, ब्रश, पेस्ट, वेसिन और सागर की लहरा जसा उजाला, यह कहा से ? 'अनु !' 'रीमा !' 'सदीप !' मैं चीखें मारने के लिए तडफ उठा, पर उल्टा मैं अधिक सद पत्थर जैसा हो गया। ब्रश फेंक दिया, वाशबसिन का नल खाला, चुल्लू भर पानी हाथ मे लिया और फिर उसे बहने दिया। लगा, लो, आईना ही तोड डालू, पर केवल मैं उसके पास से खिसक गया। कुछ राहत मिली। दो कदम चलकर एक खभे के सहारे मैं थम गया। सास मे भार कसे लगता था ? और यह छाती तो जस अभी अभी बिखर जायगी

वाश-बेसिन क आईने की ओर देखन की वत्ति मैंने त्याग दी, और फिर भी कुछ क्षण पहले का अनुभव मेरे भीतर पुन जीवत हो गया। चोरो और खोपडी की आख जसा घोर अँधेरा था या क्या ? मेरी फूटी जा रही कनपटियो को दबाने के लिए मैंने हाथ ऊचे किये, पर व झेंप गये। तो मेरा चेहरा गया कहा ? बचपन मे आँवली पीपली खेलते समय ललाट पर हुए घाव की निशानी, अनु ने जहाँ पहला चूमा लिया था वह गाल, पद्रह सोलह वप की उम्र मे पाखाने म छिपकर बीडी का कश लगाते थे वे होठ, दुगाकर मास्टर ने अनेक बार ऐंठे थे वे कान, अठारहवें वप की सीढी पर पहुँचने पर जहाँ नायू नाई ने पहली बार मोटा उस्तरा फेरा था वह दाढ़ी—सब, सब कुछ ही नहीं रहा या ? किसने काट लिया था मेरी

गदन तक का सिर ? मैं क्या कोई राजपूत योद्धा था कि केवल मरी घड ही बची थी ? मुझे अभी भी क्या किसी लडाई म जूझना था ? कब तक ? मूढता की भावना ज्वार के पानी की तरह मुझ मे ऊँची और ऊची बढती जाती थी और सभी ओर फैलती जा रही थी।

कप-रकाबिया खनकी। यही जैसे जीवन की एकमात्र ठोस वास्त विकता थी। रसोई मे जाकर मैं क्या करूँगा ? विचारो ने मुझे घेर लिया। पर कप-रकाबियो की झनकार जैसे किसी जादूगर की बाँसुरी हो इस तरह मुझे खीचती रही। मैं सब कुछ देख सकता था। फिर आखविहीन आदमी की तरह चलता मैं रसोई की ओर गया। दरवाजे के पास चुपचाप खडे रहकर मैंने रसोई म दष्टि डाली। स्टोव सुलग रहा था। पानी गम करने के बब म से धुए की लकीर चकराती निकलती थी। मुझे धुआ बिलकुल अच्छा नही लगता। तनिक धुआ हुआ और मरी आँखें जलने लगती और उनम से पानी बह आता। पर अब शायद ऐसा नही होता। अब मेरी आखें शायद कभी भी भीगेंगी नही। डरते डरते मैंने अनु की ओर देखा—वही अनु जो कल रात अधेर कमर म मेर बिस्तर म मेरे नजदीक मेरे खुरदरे हाथ के स्पश के दायरे मे अपने चिडिया के घोसले जैसे अस्त व्यस्त शरीर के साथ, अपने पायरिया से गधाते मुह को मैंन हलकी कपकपी महसूसी और फिर अनु की ओर देखा—अरे, मेरा यह कापता, पसीन से लथपथ शरीर और अनु का खोया खोया चेहरा--जिसे मैंने पहली बार एक सजे मण्डप मे पुरान सफेद कपडे की आड म देखा था, और तब अनु की आँखें रो रोकर लाल सुख हो गई थी, क्योकि वह अनिच्छा से मेरे साथ ब्याह के मण्डप मे बैठी थी और उसके पेट मे तब तीन महीने का बच्चा था और यह मैं जानता था बीसेक वर्षो तक अनु का वह चेहरा मेरी इस उबड खाबड दुनिया की एक खुरदरी हकीकत बनकर रहा था और आज मैं देख सकता था कि एक सस्ती पबद लगी, सूती साडी मे लिपटा हुआ उनका शरीर, उसके ब्लाउज के दो टूटे हुए, एक खुला और एक बन्द किया हुआ बटन, गले म झोल चढी हुई जजीर—सब कुछ ही चमक दमक विहीन, अव्यवहृत कमरे जैसा। हिम्मत कर मैं रसोईघर म घुसा। अनु को लात मारने की और उससे लिपट पडने की दुहरी इच्छा हो आई। तभी दोनो

बच्चे मुझे दिखाई दिये। सदीप ब्याह के समय अनु के पेटम था, रीमा उससे ढाई वप वाद मे हुई थी। अरे, सदीप का यहता नाक और रीमा की सूजी हुई आँखें गायव! अनु के पेट म था तभी से सदीप के चेहरे की मैंने कल्पना कर ली थी—वह मुझ जैसा तो नही ही है। और रीमा की आँखें मुझ जैसी थी, फक केवल इतना था कि मे रो सकता न था।

'चलिए, चाय बन गई है। वहाँ दरवाजे पर ही क्या रुक गये!' 'पप्पा, आज मैं स्कूल अध जन दिवस का चन्दा लेकर ही जाऊगा।' 'पप्पा, मेरी सहेली क जैसी फ्रॉक '—शब्दा और आवाज से मैंने तीना का अच्छी तरह पहचान लिया। तभी एक फ्रॉक और चडडी आकर मेरी गाद मे बैठ गई। यह रीमा होनी चाहिए। मैंने उसके सुनहरे बाल, फूल जैसे गाल, सफेद दात और तीखी ठुड्डी का स्पश करने की व्यथ कोशिश की।

'पप्पा, यह क्या कर रहे हैं आप ?' मैंने रीमा की आवाज सुनी। केवल आवाज ही अब परिचित थी।

मेरे कधे पर बोझ पडा। छोटी पेंट और कमीज। शायद। सदीप ही ऐसे कपडे पहनता था। मैंने हाथ पीछे की ओर कर उसके घुघराले वाल, पोपला मुह, बहता नाक और फूले हुए गालो को खोजने का प्रयत्न किया। पहले जितना ही वह मुझे परिचित लगा।

'पप्पा, आप ' बाकी के शब्द डूब रहे हा ऐसा लगा।

'क्या, आज आपको ऑफिस जाने की जल्दी नही जो चाय का कप लेकर पुतले की तरह यहा चिपके है? रोज तो पीछे आदमखोर राक्षस लगा हो वैसे ' अनु की आवाज जरा भी बदली हुई न थी। मुझे उसके मुह मे कपडे का गोला ठूस देने की इच्छा हो आई पर उसका मुह

सुना-अनसुना कर हाथ म चाय का कप लिए तेज चाल से अपने कमरे मे आकर मैं एक कुर्सी पर बठ गया। मुझे अनु, रीमा और सदीप के चेहरे याद आने लगे। पिछले बीस वर्षों से अनु का चेहरा मरे घर के पुराने, जग लगे, धधकते-धुधले लालटेन की तरह जलता था। सदीप का चेहरा एक ऐसा आईना था जिसमे झाकने पर मैं कभी भी अपना प्रतिबिंब देख सकता न था। रीमा का चेहरा कोई आईना नही, पर आईने की केवल एक दरार था। अब लालटेन बुझ गई थी, आईना चूर चूर हो गया था, मग मरीचिका

सूरत गई थी, दरार मिट गई थी, फिर भी मैं था, अनु, रीमा, मनीष थे।

और बाहर चेहरों की असंख्य दुकानें थी इसका ध्यान, मैं हाथ में पाटफाइलों लेकर ऑफिस जाने के लिए निकला, तब आया। चबूतरे से उतरते ही 'कम हैं बचुभाई ?' शब्द मेरे निकट आये और उनके साथ हो धोती कमीज हाफ-कोट। मैं आवाज का पहचानता था और ठिगना, मोटा ताजा यह शरीर, आगे बढ़ी हुई तोंद, शायद ये ओच्छवलाल हो या माणेकलाल या देखें तो भीमाभाई भी लगभग ऐसे ही कपड़े पहनते हैं या फिर ये जेठालाल तो नहीं हैं ? ऐसी ही ठिगनी देह पर यह नाक में से निकलती हो वैसी आवाज दलसुखराम की अथवा मगनलाल की है, मैं असमंजस में था तभी उस आदमी ने मुझे झकझोरा, 'अरे, मैं नरभेराम, मुझे भूल गये आप ?'

'ओह, नरभेराम ?' मैंने कहा। मुझे लगा कि मैं हँसा झूठमूठ। शायद ये नरभेराम ही होंगे। पर ये नंदसुखलाल या निगमाकर न थे इसकी मुझे प्रतीति न थी। ये झूठ तो नहीं बोल रहे हैं ? क्या प्रमाण था उनके पास उनके नरभेरामपन का ? महगाई, वेतन बढोतरी, मिलावट आदि के विषय में यंत्र की तरह बातें कर, मुझे थोडी देर हो रही है यों वह बस-स्टाप पर आया। सिरविहीन आदमियों की क्यू लगी थी। केवल पट, कमीज, धोती बुशर्ट, कोटी, मिनिस्कर्ट, साडी, मक्सी, कबत, चोगा, लुंगी या बनियान में लिपटे हुए कुछ परिचित आदमी होंगे। बीस वर्ष से मैं इस कतार में खडा रहता आया हूँ। यह सुलभा स्कर्ट-ब्लाउज पहनकर स्कूल जाने के लिए तैयार खडी रहती थी, आज वह चार बच्चों की माँ बन गई है। बस स्टाप। निहालसिंह की दाढी के अधिकांश बाल सफेद हो गए हैं। बस-स्टाप। अब्दुलरहमान के पान की पिचकारियों से सडक रंग गई है। बस स्टाप। हम बस के हॉर्न और पंद्रह पच्चीस पैसों की टिकट जितने ही सामान्य हो चुके हैं अथवा ड्राइवर के फट चुके खाकी कोट जैसे। बस-स्टाप। पर आज ये सभी और मैं और बस स्टाप। चिंताओं बोझों से और उपेक्षाओं से हमारे चेहरे चपटे हो गये थे गर्दन में उतर गये थे, लालटेन, आईना और दरार

मैं ऑफिस की लिफ्ट में घुसा, तब फिर अन्य जाने-पहचाने शरीरों

से घिर गया। लिफ्ट का कलई उतर चुका धुधला आईना, वेल्ट पस, सिगरट के टाटे, हाथा मे गागल्म, पाटफोलियो के किनारे, बूट, चप्पल, आवाजें। दिन दहाडे दखी न जा सके उतने पत्ता और डालिया के बीच चीटी जैसा मैं। इनमे सभवत तारकुण्डे होंगे, पर उन्हे केलकर या नामजोगी कहें तो कोई अन्तर पडने वाला न था, क्योंकि तीनो बीस वर्षों से आफिस म सिर भुकाकर एकाउन्ट कीपिंग का काम करते आये थे और शाम तक उनको चेहरा ऊचा करने की फुसत मिलती न थी। इनमे शायद सुहासिनी कन्म होगी, पर उसे फ्रेनी काटपिटिया या मिन्टो द सिल्वा कहे तो भी चलेगा, क्योंकि तीनो की अगुलियाँ वर्षों से इकधारी टाईपिंग से दरक गई थी। और तीनो की छाती मे यावन का जहर घुमडता था और टाइपराइटर पर निकलती स्टेंसिल कॉपी जैसी इन तीनो मे से एक का पति बीमार था, दूसरी की माँ बुड्ढी थी, तीसरी

मैं ऑफिस पहुँचा तब बहुत देर हो चुकी थी और ऑफिस लोगो से खचाखच भरा था। टेबिलो और कुर्सिया पर फाइलो मे और टाइप राइटरा पर लेजरो मे, ड्रावरो पर गदन तक के धड झुके हुए थे और उनमे से कोई भी सिर पर घूमते शिलिंग फेन, स्टील की आलमारी या डुप्लीकेटर मशीन की तरह एक-दूसरे से खास भिन्न लगते न थे। पैन, पचिंग मशीन, पिनकुशन और कॉलबेल के एक चमकीले रण मैदान मे सभी लोग राजपूत योद्धाओ की तरह युद्ध के लिए उमडे हो ऐसा लगता था।

मैंने पेन म स्याही भरी, फाइल खोली, ब्लाटिंग पेपर लिया, रबर-स्टैम्प लगाई, लाल भूरी पेंसिल छीली, भाके खाय, घडी की ओर बार-बार देखता रहा तीन बार टायलेट जा आया फिर से पेन मे स्याही भरी, फाईल खोली ब्लाटिंग पेपर लालटेन, आईना, दरार, बस-स्टाप, लिफ्ट ।

मनेजर ने मुझे अपनी केबिन म बुलवाया। इस समय हमारे मनेजर मिस्टर श्रोफ थे, पिछले वष मिस्टर महता थे। पाँच वष पहले मिस्टर दलाल थे। दस वष पहले मिस्टर मिस्टर श्रोफ की गदन पर मिस्टर दलाल का सिर रख देने से या मिस्टर महेता की धड पर जमनादास का चेहरा चिपका देने से कोई अन्तर पडने वाला न था। मैंने सोचा था कि आज मैं कोई उलाहना नहा सुनूगा। फाइल मनेजर की टेबिल पर पटकूगा

और दनाट से केबिन से बाहर निकल आऊगा।

घर वापिस लौटा तब दर हो चुकी थी। बस म मुश्किल से जगह मिली थी। अनु के जटा जैसे बिखरे हुए बाल, सदीप का बहता नाक और रोने से सूजी हुई रीमा की आखें बस म पूरे रास्ते मुझे याद आती रही। घर मे केवल नाइटलप जल रहा था। सदीप हाथ मे किताब लिए और रीमा पास मे स्लेट रखकर सो गयी थी। अनु एक कोने म हाथ पैर समेट कर कबाडखाने की तरह लेटी थी। वाश बेसिन के पास जाने की मेरी हिम्मत न हुई। आवाज किये बिना मैंने स्वय ही रसोई मे जाकर जा हाथ लगा वही थोडा खा पी लिया। कपडे बदलकर मैं अनु के पास बिस्तर मे आया। उसकी साडी अस्तव्यस्त थी। उसके पैरो मे गुदगुदी करने की इच्छा मुझे हुई न हुई और मैं भय की अनचीती भावना से नखशिख काँप गया। गुदगुदी करने की इच्छा मैंने पुन चाबुक फटकार कर जाग्रत की और मेरी छाती के खोखलेपन म से वेदना बह आई। प्रयत्न का ढीला ढाला गोला बनाकर मैं बिस्तर पर लेट गया। सामने दीवार के धब्बेदार रगो के बीच एक धुधली, मैली और पुरानी तस्वीर मैंने देखी। निश्चित रूप से यह तस्वीर किसी देवता की थी। रोज रात को सोने से पहले इस तस्वीर की ओर देख लेने की मुझे वर्षो से आदत थी—नसवार सूघने जैसी ही। तस्वीर के देवता का आकार भी मैं लगभग भूल गया था अथवा गणित के अक की तरह उस आकार को रट डाला था। फूलो के ढेर के पास रखे पैर, गहरा पीला पीताबर, नगा भूरा स्याही की दवात जैसा शरीर, कधे पर दुपट्टा और जनेऊ लब हाथा मे कडे और बाजूबद, गले मे सफेद फूलो का हार अथवा साँप की माला, हाथा म बासुरी फिर फिर भी मुझे कैस कुछ याद आता न था? तस्वीर का सब कुछ कैसे मेरी समझ म आता न था? हाँ हाँ याद आता है स्मरणो की पर्तें सिकुडती हैं। भुवनमोहन स्मित मोहक आँखें, कानो मे कुण्डल, होठो पर टिकी बाँसुरी, ललाट पर पीला तिलक, घनश्याम बाल, सिर पर चमचमाते रत्नजटित मुकुट मे लगी मोर की पाख,—पर यह सब कुछ सामने की धब्बेदार दीवार पर लगी पीली तस्वीर म क्यो दिखता न था? महाभारत के युद्ध म क्या उनकी धड लडी थी? और तभी से □

:ाव

[डेव

: अत मे विद्यार्थियो की हडताल और घेराव के समाचार "
कल कालेज के विद्यार्थियो ने प्रिंसिपल श्री सहदेव के बगले पर डाला
घेरा अभी तक नही उठाया है। श्री सहदेव, उनकी पत्नी और पुत्री
विद्यार्थियो की बराबर नजरबदी चालू है। यह इतनी सख्त है कि
व पिछले तीन दिना से बाहर की दुनिया से निहायत की अलग पड
[है। दूध और शाक-भाजी जसी रोजमर्रा की आवश्यक चीजा पर भी
तक पहुचने मे रोक लगा दी गई है। आश्चय तो यह है कि ऐसे
ख सयोगो म भी श्री सहदेव ने राज्य सरकार की किसी भी प्रकार
महायता लेने की सपूणतया मनाही कर दी है, इतना ही नही, उन्होने
भी निवेदन किया है कि उग्र से उग्र स्थिति म भी सरकार पुलिस
ाकर दखल न दे और उचित सयम दिखाये आज के समाचार समाप्त
[।

विजया ने रेडियो का स्विच ऑफ कर पति के सामने देखा। पिता के
मन अधिक समय तक नहीं देख सकने के कारण सज्ञा उठकर अपने
मरे म चली गई। विजया सहदेव के सोफे के सामने आ खडी हुई। पति
चेहरे पर स्वतनता से फली हुई वेदना वह मात्र देख ही नही, अनुभव
। कर सकती थी। उसे बहुत-बहुत कहना था। पति को सात्वना देनी थी,
नके दुख की भागीदार होना था, परतु जीवन मे यह पहला प्रसग था
ब वह असहाय बन गई थी। वाणी जसे मूक हो गई थी। उसकी नजर

म नि सहायता के सिवा अन्य कुछ भी झलकता न था।

जैसे स्वगत फुसफुसाते हो, ऐसे उदास स्वर में सहदेव बोले, 'मेरी समझ में नहीं आता, सात्र प्रयत्न करता हूँ फिर भी समझ में नहीं आता। क्या हो गया है इन विद्यार्थियों को? स्वप्न में भी सोचा न था कि मेरे विद्यार्थी ऐसे निकलेंगे। विजया! अक्षर, नीरद शुभलक्ष्मी उनके अलग ही धिक्कार भरे चेहरे न देखे होते तो मानता भी नहीं कि वे इस कारस्तानी से संबद्ध हैं।"

केवल तीन दिनों में आप कैसे सूखकर काटा हो गये हैं। इतना निराश मैंने आपको कभी देखा नहीं। आप मुस्कराये तक नहीं, पेट भर कर खाया तक नहीं। और मेहरबानी कर यह सिगार न पियें तो! देखिये, आप चिढ़े नहीं। आपका गला फिर खराब हो जायगा। फिर वापिस खाँसी आने लगेगी। इतने समय से तबीयत ठीक हुई है वह फिर वापिस पल्टा खायेगी। ऐसे में डॉक्टर को भी कैसे बुलायेंगे? फोन भी दुष्टों ने काट डाला है।' हिम्मत करके, पति के बोलने की शुरुआत के सहारे विजया एक सांस में सारा कह गई।

'ओह! विजया, तू नहीं समझती।'

'मैं सब समझती हूँ। आप अपने आदर्श की सनक में वास्तविकता को देखने से इन्कार कर रहे हैं। देशकाल बदल गया है। विद्यार्थियों के व्यवहार और मिजाज बदल गये हैं। मात्र यहीं हो रहा है, ऐसा थोड़े ही है? सारे देश में—कलकत्ता हैदराबाद, पटना इलाहाबाद, अलीगढ़, बनारस, त्रिवेंद्रम, भावनगर! कहाँ नहीं हो रहा, यह बतायेंगे? विदेशों में फ्रांस पोलैंड, अमेरिका चेकोस्लोवाकिया—सारी दुनिया में असंतोष का बवंडर फैल गया है। आप इतने अधिक दुखी नाहक ही क्या हो उठे हैं? आप तो, जैसे आपकी ही भूल से ऐसा हुआ है यह मान बैठे हैं। मान जाइये न सरकार स्वयं ही संरक्षण दे रही है तो आप यह किसलिये जिद्द कर रहे हैं? यह बिफरे हुए विद्यार्थी कुछ का कुछ कर बैठें उससे पहले ?'

उसे वहीं चुप करके सहदेव ने कहा, "नहीं नहीं, विजया ऐसा कभी भी होने नहीं दूंगा। मेरे सिर का बोझ भिन्न है। ये जोध जवान, पर थोड़े

अपरिपक्व, लड़के लड़कियाँ, पुलिस के साथ की झड़प में हिंसक बनें, दो-चार विद्यार्थियों की लाशें गिरें यह भूमि लहू से तर हो जाय, इस कालेज पर कलंक का टीका लग जाये। लहू सींच-सींच कर मैंने और मेरे साथियों ने इस कॉलेज को खड़ा किया है। जगत भर में इसकी प्रतिष्ठा स्थापित की है। दस मिनट में सारा धूल पानी हो जाय। विजया, उन नादानों ने शान खोई है, पर मदभाग्य से मेरी अभी ज्यों की त्यों है। मैं इस विचार से काँप उठता हूँ कि दो चार माता पिता मेरे सामने फरियाद करते खड़े रहें —हताश और दुत्कारते हुए वे मुझे पूछें मेरा लाल कहाँ है? हमारा सर्वस्व छीनते आपका कुछ न हुआ? नहीं, विजया, मेरा पेशा जीवन का रक्षण करने का है उसका भक्षण करने का नहीं। हमारी सज्ञा भी यों उफ! नहीं, नहीं, यह विवेकहीन कर्म मैं कर ही नहीं सकता।"

मन पक्का कर दृढ़ता से विजया ने अपनी दलील पेश की, "आपके उन विद्यार्थियों के चेहरों के सामने खिड़की में से एक नजर तो डालिये। ऐसे तिरस्कार भरे चेहरे मैंने कभी देखे नहीं। मेरे मानने में नहीं आता कि उनमें से कई कुछ दिन पहले इसी ड्रॉइंग रूम में बैठकर नम्रता से, अहोभाव से आपके साथ बातें कर रहे थे। बताइये तो, उनमें से एक को भी आपकी यह कोमल, प्रेमित भावनायें समझने की तनिक भी दरकार है? सहज भी मानवता है? आप बिना दूध और चीनी की चाय पी रहे हैं। गेहूँ का आटा खत्म हो रहा है। चावल आज रात तक ही चलें इतने ही बच रहे हैं। शाक भाजी । ओह! इस घर में एक छोटा बच्चा होता तो ।" विजया की आँखें भर आईं, उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

सहदेव अस्वस्थ हो गये। विजया ने उनके साथ मिली नजर हटा ली यह उन्होंने महसूस किया। फिर से गला खखारकर विजया कहने लगी, "आप क्या यह मानते हैं कि भावनाओं के आवेग में इस घर को आग लगाकर, हम भून डालना चाहते बाहर खड़े हुए एक भी दैत्य को तनिक भी दया आने वाली है?" यह सुनते ही वे सन्न हो गये। यह विचार उन्हें क्यों नहीं आया, इसका उन्हें आश्चर्य लगा। अपना भाव छिपाकर वे बोले, "पागल और दुष्ट विचार न कर, विजया!"

"सहा नहीं जाता! सच कहती हूँ मेरा मन क्षण क्षण भय से थर-थर

काप रहा है। जसे मुझे कोई फासी पर चढाकर, सता-सताकर मार रहा हो।" वह फूट पडी और सुबकने लगी। सहदेव तुरत उठ खडे हुए और उसे सोफे पर बैठाकर स्नेह से उसकी कमर पर हाथ फेरने लगे।

"मैं तुम्हारी भावनायें अच्छी तरह समझता हू पर तू पस्तहिम्मत न हो, विजया! तूने अब तक मुझे बडी मदद दी है उसकी उष्मा से ही तो मैं टिक सका हू। यदि यह हट जायेगी तो मैं भी लडखडा जाऊगा। यह मेरे जीवन का कठिन से कठिन प्रसग है। तू मुझे समथन दे। हृदय म गहरे और गहरे मुझे विश्वास है कि इसका परिणाम अच्छा ही आने वाला है।"

विजया शांत और स्वस्थ हो गई। सहदेव का हाथ पकडकर उसने उन्हें अपने पास खीच लिया और उनके हाथ को जोर से दबाती वह उनके सामने हसने का प्रयत्न करती रही।

सहदेव के मन मे उठ आया अतीत का एक स्मरण तरोताजा ही विजया के साथ उनकी शादी हुई थी। विजया उनके साथ एकात मे मिलते अत्यत क्षोभ शम महसूसती थी। लज्जा से वह लालचुट हो जाती। एक दिन ऐसी ही एक गुपचुप मुलाकात म उन्होने हिम्मत करक उसके कोमल हाथ को अपने हाथ म लिया था। विजया के कापते, चिकने, छोटे हाथ की अगुलिया ने भी उनके हाथ को जोर से दबाकर कई देर तक पकडे रखा था, और फिर एकाएक उसे आखा से छुलाकर कुछ फुस फुसाकर वह सन्नाटे की तरह तेजी से दौड गई थी।

कुछ क्षण सुनमुन रहने के बाद उन्होने गला साफ कर कहा "तू *यह न मानना कि मेरा हृदय हिल नही उठा। मेरे हृदय को एक गहरा* आघात लगा है। मुझे भी अच्छे-बुरे ऐसे बहुत विचार आते हैं। अधिकतर विचार अनिष्ट है। पर उनमे भी वे सदविचार झाक झाक जाते हैं। और मैं, डूबता आदमी तिनका पकडता है वैसे उनसे लिपट जाता हू। जिन विद्यार्थियो को मैंने पुत्र से भी अधिक निकट का माना है उनम से पाच-दस के चेहरे मेरी दष्टि के आगे से हटते नही। कैसे चेहरे! तिरस्कार से ठसाठस, गभीर, अपमान भरे। उनको दखकर मेरा समस्त मनप्राण मेरा अह हुकार कर उठ खडा होता है, वैर की वृत्तिया लपट की तरह सुलग

उठती है। ऐसा लगता है कि इन दुष्टो, नमकहरामो के लिए ही मैंने समर्पण किया ? और जीवन के ध्येय के पीछे सवस्व त्यागकर लग गया। इन विद्यार्थियो के लिए—मैंने मुझे मिलती ऊची-ऊची नौकरिया नकार कर, मुझे प्राणो से भी प्यारी रिसच की अच्छी से अच्छी सभावनाओ को लात मारकर, राकफेलर रिसच इस्टीट्यूट, कॉमनवेल्थ रिसच आर्गेनाइजेशन, ब्रिटिश मेडीकल काउसिल, स्वीडिश अकादमी—कितनी-कितनी ऑफरो को अस्वीकार किया। आज सोचता हू कि तुम्हारे और मेरे सुख को ऐसे परिणाम के लिए होम दिया। आज तो मैं सुख मे आलोटता होता। कीर्ति और यश मिलते होते। पर, भारत मेरा देश है, और इसी की मेरे हृदय मे अनुकपा थी, भारत का विद्यार्थी—भारत का युवक, जगत के युवको के सामने छाती फुलाकर खडा रह सके, इसके लिये मैंने यह आत्म-समपण किया था। ओह ! ऐसा दिन आयेगा, यह तो मैंने सपने मे भी सोचा न था !

विजया ने उनके हाथ को स्नेह से दबाया और उनके कधे पर सिर डाल दिया। सहदेव ने ममता से विजया के सिर पर हाथ फेर कर उसके बाल सवारे। उनके हृदय का बोझ काफी हलका हुआ था। उन्होंने अधूरी सिगार ऐशट्रे पर से उठाने के लिए हाथ लबा किया। दृढता से पर मदुता से ऐसा करते उन्हे रोक कर विजया बोली, "चलिए आपको चाय बना दू दूध और चीनी बिना की फिर भी वह आपकी तलब कुछ मिटायेगी।'

वह उठ खडी होने लगी कि दरवाजे पर दस्तक हुई। दोनो के कानो को वह कर्कश लगी। थोडा चौक कर, एक दूसरे के सामने देखते हुए वे दोनो उठ खडे हुए।

नौकरानी भीतर के कमरे म से आकर उनके सामने चुपचाप खडी हो गई। विजया ने गदन हिलाकर उसे दरवाजा खोलने जाने की इजाजत दी। इस दरमियान उन दोनो के हृदय आशका से धडकते रहे।

नौकरानी एक छोटी सी स्लिप लेकर वापिस आई। सहदेव के हाथ मे उसे रखते हुए उसने कहा, "आपसे मिलना चाहते हैं।'

सहदेव और विजया ने साथ साथ उस स्लिप को देखा—"विनायक

पडित।"

"यह कौन ? विद्यार्थियों को लांघकर यह यहां कैसे आ सका होगा ? किस काम से मुझसे मिलना चाहता होगा ?" सहदेव फुसफुसाये।

उन्होंने आगंतुक को भीतर लाने के लिए नौकरानी से कहा।

कुछ ही देर में मध्यम वय और कद का, फटेहाल, बडी आंखों और लंबी जुल्फों वाला एक आदमी, बिना इजाजत लिए, बेपरवाही से सिंगल सोफे पर बैठ गया और बोला, "मुझे नहीं पहचाना, सहदेव !"

विजया तुरंत ही वहां से जाने को हुई। उसने सहदेव से पूछा, "ये भाई बिना चीनी-दूध की चाय पीयेंगे ?" विजया की आवाज के ढंग से सहदेव समझ गये कि उनकी तरह विजया को भी आगंतुक का व्यवहार बिल्कुल अच्छा नहीं लगा था। "हो-हो" करके अधिक रूक्ष होकर हंसता, बडी मजाक उडाता हो जैसे वह बोला, "आफसोस। जरूर, जरूर। अरे बिना चाय की चाय भी पी सकूं ऐसा हूं। फिर भी तुम्हें यह मुसीबत झेलनी पड रही है यह दुःख की बात है। तुम ठहरे नाजुक लोग। हम तो अज्जड हैं। मूंगफली मुरमुरे, सूखी रोटियां खाते चबाते जिंदगी लग भग बीत गई है। मुझे तनिक भी तकलीफ नहीं होती यह चाय पीने से।"

कुछ कडुवा कहकर उसका अपमान करने की वृत्ति को जैसे-तैसे दबाती विजया कुढती हुई रसोई में चली गई।

'तो मैं तुम्हें याद नहीं आ रहा, क्यों ?"

"नहीं बिल्कुल नहीं।" कटुता ज्यों-त्यों दबाकर सहदेव बोले।

"तुम्हें तुम्हारी याददाश्त को काफी दूर भूतकाल में खींचनी पडेगी। मुझे विश्वास है कि मेरा नाम नहीं तो मेरा चेहरा, मेरा शरीर, मेरे हाव भाव कुछ तो ताजा होगा ही।" कौतुक, कटुता और बेचैनी से गर्दन झुलाते सहदेव बोले, "सॉरी। मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा।"

पंडित अत्यंत दुःखकातर स्वर में बोला "ठीक बीस वर्ष पहले की, सातवीं कक्षा की एक स्मृति तुम्हें ताजी करनी होगी। तब मैं और मेरे साथी तुम्हें पोगा थुलथुल घरघुसरा आदि नामों से पुकारते थे। किताब और पहले नंबर के सिवा अन्य कुछ तुझे याद है सहदेव ?"

सहदेव का लहू थोडा गरम हो गया। ज्यों त्यों क्रोध को काबू में रख-

कर वे उसकी बात सुनते रहे।

"कुछ भी अब याद आता है?"

उसके चेहरे की कुछ-कुछ झाकी होने लगी उन्ह, परतु विनायक का अपमान करने के इरादे से उन्होंने गलत कहा, "अब भी नही, सॉरी।"

पडित का चेहरा बहुत उदास हो गया और वह बोला, "खैर, मैं बहुत ही बदल गया होऊगा। सहदेव, याद है तुझे? एक शिक्षक को बकरा कहकर हम पुकारते थे और उसने एक दिन एक थुलथुल, मेरे जैसी जुल्फा वाले लडके को पकडकर खूब पीटा था?" सहदेव के मन मे स्मृति ताजी हो गई।

"तुम सेवादल म जाते थे वह?"

"हा! लीडर जैसा था।"

"कुछ समय तुम आर एस एस से भी सबद्ध थे न?"

"हा, और अब उद्दामवादी कार्यकर्त्ता विनायक पडित हू।"

"ओह! तुम्हारा नाम पेपर म कभी कभी पढने का स्मरण है।"

'मैं पढने मे ठोठ था। इसलिए तुम्हारी दुनिया म मेरा स्थान न था। फिर आठवी कक्षा मे मैं स्कूल छोड गया था। बताओ तो, मेरी अन्य प्रवत्तिया तुम्ह कैसे याद रह गइ? मुझे पता है कि तुम किताबा मे से कभी मुह ही ऊचा करते न थे।

"जुलूस मे झडा हिलाते और चीख चीख कर स्लोगन बोलकर शक्ति नष्ट करते मैंने तुम्हें देखा था। खैर! केवल यही याद रह गया है।"

"अस्तु, मैं यहा झगडा करने नही आया, झगडा शात कराने के लिए आया हू। मैं शाति की ऑफर लेकर आया हू।" एक क्षण के लिए सहदेव चकित हो गये और दूसरे ही क्षण उनका हृदय आशका से धडक उठा। विद्यार्थिया की हडताल, घेराव और विनायक की उद्दामवादी राजनीति के साथ का गहरा सबध उनके ख्याल म आते ही वह समझ गये कि विनायक घेराव को लाघकर किस तरह उनके घर म आ सका था।

"पिछले तीन दिना स तुम्हारा परिवार राबिसन क्रूसो की तरह जी रहा है। तुम्हारी अब तक की कीर्ति को लाछन लग रहा है। क्या तुम्ह इस हडताल का अत नही लाना?"

"बात बहुत बिगड गई है। इसका समाधान अब मुश्किल है।"

"नहीं, यह तुम सोचते हो उतना मुश्किल नहीं।" वह हसा। उसम गव और धूतता दोनो लगी। और फिर एकाएक उन्हे सब समझ मे आने लगा। बर्षो तक जिन विद्यार्थियो के लिए, जिनके सुख, उन्नति और सिद्धि के लिए, जिनके जीवन के प्रश्नो को सहानुभूति से समझकर उनको उनमे से उबरने के सच्चे रास्ते पर लाने के लिए उन्होने अपने परिवार के सुख, सिद्धि और कीर्ति को न्योछावर किया था, ऐसे पुत्रवत् विद्यार्थी उनके स्नेह और सलाहा को भूलकर राजनीति के दाव पेंच मे फसकर, विनायक जैसे नताओ के हाथ की कठपुतलिया बन गये थे। वे उनके मित्र की बजाय जैसे शत्रु बन गय थे। उनके हृदय मे कभी न सध सके, एसी दरार पड गई थी।

"देखो सहदेव, आज की दुनिया आदर्शों से—माफ करना मुझे, समझ दारी से नही चलती। मेरी माग स्वीकार करो तो कल सब कुछ शात हो जायेगा।"

हू! कल सब शात हा जायगा। इसे यह सब चुटकी बजाने जसी बात लगती है। वे मन ही मन बोले। उन्हे विद्यार्थी याद आने लगे। एक दो नही सैकडो की कतार उनकी नजर के सामने खडी हो गई। कभी आर्थिक सहायता मागते, कभी स्कॉलरशिप फ्रीशिप के लिए आते, कई विदेश जाने के लिए उनकी सिफारिशी चिट्ठी लेने आते, मानसिक विड बनाओ के हल के लिए आते, तरह-तरह की सहायता मागते, गरीब, मध्यमवग और सपन्न घर के युवक, सब उनकी नजर के सामने स गुजरते रहे। उन्होने उनके लिए चदे मागे, उनके लिए देश विदेश म भीख मागी एक प्रामाणिक शिक्षक और वत्सल पिता करता है वह सब वे कर गुजरे। और आज ?

'देखो, यह सारी धाधल गडबड एडमिशन के कारण है। इसम अय सभी मिल गये हैं और इस कारण उनकी मागो की लिस्ट लबी हो गई है।"

'या फिर किसी ने लबी की है ? मेरी कॉलेज के विद्यार्थी इसमें किस तरह फासे गये हैं यही मेरी समझ मे नही आता।"

"ओ हो हो" करके वह धूर्ततापूर्ण हँसी हँसा, "मैंने कहा न मैं वास्तववादी हू। एडमिशन मागने वाले विद्यार्थी भी इसी विश्व-विद्यालय के हैं। एक ही केम्पस् मे रहनेवाले न्याय तो मागे न। प्यॉर रियलिज्म।"

"हा, हा! जरूर? मीन्स आर जस्टीफाइड फॉर दा गोल।"

"तुम हमारी उद्दाम फिलसुफी से परिचित हो। तो, तो मेरा काम सरल वन जायेगा। मेरा इकलौता लडका है, उसे एडमिशन नही मिला।"

"सॉरी! यहा केवल मैरिट के आधार पर ही सलेक्शन होता है, मैं कुछ भी कर नही सकता।'

"मैं क्या कर सकता हू, इसका तुम्हें क्या अभी भी ख्याल नही आया, सहदेव?" उसकी आवाज सख्त हो गई। सहदेव चुप हो गये। विनायक की आवाज मे झलकती धमकी उनकी समझ मे आ गई। अनजाने ही उनका मन काप गया। "मैरिट लिस्ट तो तुम ही बनाते हो न?"

"नही! विद्यार्थियो की गुणवत्ता उसे बनवाती है। देखो, मेरी कॉलेज का सारा काम बिल्कुल साफ-सुथरा है। तुमने न्याय की बात की थी न? यह सारी धाधल गडबडी ही अन्यायियो की है। आवेदको की अपील कोर्ट ने रद्द की है इसलिए उन्होने यह रास्ता अपनाया है।"

"न्याय और अन्याय! घेराव कोई इससे रद्द तो नही हो सकता।'

सहदेव स्तब्ध रह गये। फिर सारा उन्हें वतुल का घेर समझ म आता है, वसे समझ म आ गया। विजया की व्यक्त की हुई आशका उन्ह दबान लगी। उन्होने त्वरित निर्णय कर लिया। "यह नहीं हो सकता।'

'तुम चाहो तो जरूर हो सकता है।"

"कैसे हो सकता है? यूनिवर्सिटी के मार्क, हमारे टेस्ट और कमेटी के इटरव्यू के मार्क इन सब म फेरफार कसे हो सकता है? उसके कितने प्रतिशत मार्क हैं?'

"पतालीस प्रतिशत।"

"वेरी पूअर। कुछ भी नही हो सकता।"

"मान लो कि टस्ट इटरव्यू म उसके माक बढ जायँ तो ?"

"किस तरह ?"

"इस समय तो अधाधुधी है। इस वष के सब कागज गुम हो सकते है।"

सहदेव के शरीर मे कपकपी छूट गई। जीवन मे जिसे वे हीन और बुरी बात मानते थे उसे विनायक अत्यत सहजता से कह रहा था। "क्या तब ?" यकबयक उठ खडे होकर विनायक बोला।

विजया चाय की ट्रे लेकर कमरे मे आ गई। हसने का प्रयत्न करता वह फिर सोफे पर बैठ गया। विजया के हाथ से प्याला लेकर वह एक सास मे ही चाय गटगटा गया।

"विद्यार्थियो का हमारी मत्रणा के क्या समाचार दू, सहदेव ?"

"तुम्हारी ऑफर मुझे मजूर है।' निहायत ही धीमी आवाज से सहदेव ने कहा।

आश्चय से आखें फैलाकर विनायक वहा से दौडा और हवा के बगूले की तरह मा-बेटी उनकी ओर बढ आयी। टूटती आवाज से, अद्ध-क्रोध से, अद्ध-आश्चय से वे पूछने लगी, "पप्पा पप्पा ?' "आपने यह क्या किया ?'

जैसे उनके प्रश्न सुने ही न हो ऐसे विजया को लक्ष्य कर सहदेव बोले, 'विजया, उस ब्रिटिश काउन्सिल की ऑफर का जवाब मैंने दिया नही है। ला देखू तो वे कागज। टमस और दूसरी कडीशस के विवरण मुझे दखने है।'

सचमुच ! और उन विवरणा के लिए आपको वे कागज देखने पड रहे हैं, ऐसा नही। यह क्या मैं जानती नही ? पर आप —आप ऐसा कर ही कैसे सकेंगे ? नही नही मैं आपको नहा फसने दूगी इसमे।'

"विजया, कभी कभी पागे को भी चालाक होना पडता है। युधिष्ठिर की तरह उसे भी चतुराई से "नरो वा कुजरो वा कहना पडता है। इस एडमिशन का मामला पूरा होगा उससे पहले श्री सहदेव शर्मा का परिवार आराम से लन्दन के किसी अपाटमेंट म बस गया होगा। सहदेव शोध म मगन होंगे। सना का लदन म पढने का सपना साकार हुआ होगा, विजया

के वाञ्छित सुख और शांति उसे मिल चुकी होगी ।"

विजया और संज्ञा के मन किसी भी तरह यह बात मान नहीं सकते थे जबकि उस रात रेडियो से यह समाचार प्रसारित हुए "मेडिकल कॉलेज की हड़ताल वापिस ले ली गई है और घेराव उठा लिया गया है। पता चला है कि प्रिंसिपल ने एडमिशन पालिसी और विद्यार्थियों की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया है।" □

एक चेहरा माओ का एक चेहरा लेनिन का

ललितकुमार बक्षी

खून दुखद तो था ही। हर खून दुखद होता है। जो मर गया वह जवान था। उसके जाने का समय आए, उससे पहले वह निबट गया। एक जीवन व्यर्थ ही सिमट गया।

पर इस शहर से परिचित है वह जानता है कि यहाँ की राजनतिक शतरंज पर एसी तो कितनी ही जिदगानिया अकारण सिमट गयी। नया कुछ नही, इसम। और नया नही इसलिए ही तो कपकपी छूटती नही है। या न ही किसी की आँख से एक आसू ही टपकता है।

खून हो जाता है फिर वह सब कुछ देखन को मिलता है जो कलकत्ता जैसे महानगर की सडक पर खून हो जाने के बाद देखने को मिलना चाहिए। सडक सुनसान हो जाती है। दुकानें बन्द हो जाती है। केवल उस मडाध भरे होटल के जिसमे आवारा लडका का अड्डा जमता है, दरवाजे खुले रहते हैं।

सडक पर बम फुटते हो तो भी यह होटल बन्द नही होता। इसके काउटर पर बैठा मोटा, काला चौबीसो घण्टे पान चबाता मुकर्जी अन्यमनस्क दष्टि से ताकता रहता है। इसके होटल की खाली बचा पर बैठकर ही तो जवामर्द माओ त्से तुग की और चीन के कल्चरल रिवोल्यूशन की तेज आवाज मे चचायें करते हैं।

पुलिस आती है तब आँख के इशारे से सब छोटी छोटी गलियो मे गायब हो जाते हैं। पुलिस की बन्द गाडी सुस्त, धीमी गति से दो चक्कर

लगाती है। फिर आई हुई एम्बूलेंस मे लाश को पोस्टमाटम के लिए सरकारी हास्पिटल की ओर रवाना करा देती है। एक भगी को बुलाकर गटर के पानी से सडक पर गिरे हुए लहू के दागो और मांस के लोथडो को साफ करा डालती है।

गाडी मे से कडक सफेद युनिफाम पहने इस्पेक्टर हाथ की बेंत हिलाता हुआ उतरता है। पीछे लोडेड राइफला वाले दो कास्टेबल है। इस्पेक्टर होटल के मुकर्जी का बयान नोट करता है। वह सडक के छोर पर परचून सामान बेचनेवाले हरी की दूकान का दरवाजा खुला कर कापते हरी के बयान लेता है। पीपल के पड के नीचे वह पागल भिखारी बैठा रहता है उसे कास्टेबल हाथ पकड कर खडा करता है। भिखारी ने क्या देखा था, यह जानने के लिए उसे धमका कर गाडी मे बैठाकर पुलिस चौकी पर ले जाया जाता है।

सडक के किनारे विशाल मकान हैं। और इन फ्लैटस मे शरीफ स्त्री-पुरुष रहते हैं। सलोनी, सुघड स्त्रिया हैं जो दीवार पर रेंगती छिपकली देखकर चीखने लगती हैं। आफिसो मे काम करने वाले "ह्वाइट कॉलर" क्लर्क हैं जो गैलेरी मे खडे रहकर रास्ते पर होता खून तो देख सकते है, पर पराए झगडे मे पडना हीन काम समझते हैं।

भद्र स्त्री पुरुषा का रक्षण होना चाहिए, यह सभी मानते हैं। इस्पेक्टर भी मानता है। जाते जाते वह पीछे दो कास्टेबल छोड जाता है। दोनो की कमर पर गोलिया भरी रिवाल्वर लटकती है। मुखर्जी के होटल से कुर्सिया खीच लाकर दोना कास्टेबल पीपल के पड के नीचे अड्डा जमाते है। होटल का छोकरा उनके हाथ मे चाय के गम कप थमा जाता है। कास्टेबल धीरे धीरे जीभ पर घूट टुघलात चाय की चुस्किया भरते हैं।

इस शहर मे कानून और व्यवस्था सभालने के लिए पुलिस है। और पुलिस के पास आवश्यक हथियार हैं फिर भी जब से यहाँ के मकाना की दीवारो पर माओ और लेनिन के चेहरे फूट निकले है, तब से जैसे किसी भी क्षण अवाछनीय घटना घट सकती है ऐसा एक अस्पष्ट भय हवा मे तैरता रहता है। रात का अधेरा घिरता है, वसे-वसे भय अधिक घहराता जाता है। बम फूटते हैं, कोकाकोला की बोतलें आमने सामने चलती हैं या

प्रतिद्वद्वी दलो के समथका म से किसी की लाश गिरती है तब वातावरण मे एक प्रकार की विचित्र उत्तजना छा जाती है—और निस्तब्धता भी।

शहीद स्तम्भ के नीचे सभाये होती हैं और मुख्य सडको पर कभी फहरात जुलूस निकलते हैं तब निठल्ले बैठे छोकरो को कुछ करन के लिए मिल जाता है। शहर के बहुत से तूफान सभा जुलूसों से जनमत हैं। सब जानते हैं कि गले म लाल रूमाल लपेट कर जुलूस म आग चलने वाले प्रत्यक न माक्स लेनिन या माओ को नही पढा। उनके लिए यह जरूरी भी नही। उनके लिए राजकीय हलचल खुल्लमखुल्ला हुल्लड मचाने का अवसर है। हुल्लड मचती है तो लूट खसोट करने का मौका मिलता है।

युवको का एक दल है जो चीन के चेयरमैन को 'आमार चेरमेन' कहता है। एक दल दूसरा है जो सडको पर लेनिन के चित्रो की प्रदर्शनी आयोजित करता है। दोनो दल निरतर लडत रहत हैं। गाली गलौज तो सामान्य बात है। बात थोडी आगे बढे तो मुक्केबाजी हो जाती है। इससे आगे बढे तो छुरे और बम। ज्वालामुखी भभक उठता हो इस तरह रह रहकर झगडा भडक उठता है। जब तक एक दो खून नही हो जाते तब तक शाति नही होती।

एक शाम यहा से एक जुलूस निकला था। 'लेनिन जिंदाबाद' के नारे लगाता था। सडक पर खडे लडको ने तुरत 'जुग जुग जीओ माओ त्से तुग' की धुन शुरू कर दी। पहले पक्ष ने दूसरे पक्ष को गालिया दी। दूसरे पक्ष ने पहले पक्ष के नेताओ को 'मुर्दाबाद' कह कर प्रत्युत्तर दिया। किसी ने एक जलती सिगरेट फेंकी। उसका अगारा एक उन्मत्त मस्तान के गाल पर लगा। जवाब म माओ समथको न जुलूस पर पथराव शुरू किया। फिर तो वेरोकटोक लडाई जमी। झडे के डडे हथियार बन गये। जुलूस मे थे, उनकी सख्या अधिक होने के कारण सडक पर थे उन्हें भागना पडा।

पाच मिनट ही जो भागे थे वे वापिस आये। अब उनका दल बडा हो गया था। गलिया मे से नये साथियो को लेकर वे आये थे। हाथो मे कोकाकोला की बोतलें थी। दो बम भी। जोरदार धमाके हुए। बोतलें फूटी। किसी के सिर से लहू टपका। भागने की बारी अब जुलूस वालो

का थी।

क्षणभर मे सडक पर सन्नाटा छा गया। दूकानें बन्द हो गयी। लोग तितर-बितर हो गए। सारे स्वर शात पड गए। केवल युद्ध करने वालो की हाकें ललकारे सुनाई देती रही। मकानो की छतो पर तमाशा देखने लोगो के झुड इकट्ठे हो गए।

किसी ने पुलिस को टेलीफोन कर दिया था। पुलिस की गाडी को घटना-स्थल पर पहुचते सहजरूप मे आधा घटा तो लगता ही है। पर आज भाग्य ठीक थे कि पुलिस जल्दी आ पहुची। पुलिस आयी और उसने हवा मे दो फायर किये और टोले भाग खडे हुए।

पर उस दिन से एक बात स्पष्ट हो गयी थी कि इस सडक पर किसी भी क्षण लेनिन और माओ समर्थकों के बीच युद्ध छिड सकता है। कोई भी अप्रिय घटना घट सकती है। जिस जवान का खून हो गया वह लेनिन समर्थक दल का था।

उसका नाम निमाई था। इस तरफ उसका आना जाना रहता था। कुछ लोग उसे पहचानते थे। उसके मामा का घर सडक के पास की गली मे था। मामा के यहा जाने के लिए उसे यही से गुजरना पडता था। वापिस लौटता तब कई बार निमाई यहा के लडको के साथ खडा रहकर एकाध सिगरेट पी लेता। पर वह था विरोधी दल का आदमी। जिस दिन जुलूस निकला और मारा मारी हुई उस दिन से निमाई का इस तरफ आना बन्द हो गया।

निमाई का खून छुरे से हुआ। ढेर होकर वह सडक पर गिरा तब चेहरा बिल्कुल विकृत हो गया था। एक पेट में दूसरा पीठ में और तीसरा गर्दन के पिछले भाग मे। पीछे की ओर के दो घाव भागते समय लगे थे। सडक पर के टोले ने उसे घेर लिया था। उस टोले का नेता आदीनाथ था। आदीनाथ वर्षों हुए बेकार भटकता था। आजकल छुरा चाकू जैसा तो उसके जेब मे हर समय रहता है। नये राजनैतिक प्रवाह उसके लिए

प्रतिद्वंद्वी दलो के समर्थको मे से किसी की लाश गिरती है तब वातावरण म एक प्रकार की विचित्र उत्तेजना छा जाती है—और निस्तब्धता भी।

शहीद स्तम्भ के नीचे सभायें होती हैं और मुख्य सडका पर झडे फहराते जुलूस निकलते हैं तब निठल्ले बैठे छोकरो का कुछ करने के लिए मिल जाता है। शहर के बहुत से तूफान सभा जुलूसो से जनमते हैं। सब जानते हैं कि गले म लाल रूमाल लपेट कर जुलूस म आगे चलने वाले प्रत्येक ने मार्क्स लेनिन या माओ को नही पढा। उनके लिए यह जरूरी भी नही। उनके लिए राजकीय हलचल खुल्लमखुल्ला हुल्लड मचाने का अवसर है। हुल्लड मचती है तो लूट खसोट करने का मौका मिलता है।

युवको का एक दल है जो चीन के चेयरमैन को 'आमार चरमन' कहता है। एक दल दूसरा है जो सडको पर लेनिन के चित्रो की प्रदर्शनी आयोजित करता है। दोनो दल निरतर लडते रहते हैं। गाली गलौज तो सामान्य बात है। बात थोडी आगे बढे तो मुक्केबाजी हो जाती है। इससे आगे बढे तो छुरे और बम। ज्वालामुखी भभक उठता हो इस तरह रह रहकर झगडा भडक उठता है। जब तक एक दो खून नही हो जाते तब तक शाति नही होती।

एक शाम यहा से एक जुलूस निकला था। 'लेनिन जिन्दाबाद' के नारे लगाता था। सडक पर खडे लडको ने तुरत 'जुग जुग जीओ माओ त्से तुग' की धुन शुरू कर दी। पहले पक्ष ने दूसरे पक्ष को गालिया दी। दूसरे पक्ष ने पहले पक्ष के नेताओ को 'मुर्दाबाद' कह कर प्रत्युत्तर दिया। किसी न एक जलती सिगरेट फेंकी। उसका अगारा एक उन्मत्त मस्तान के गाल पर लगा। जवाब म माओ समर्थको ने जुलूस पर पथराव शुरू किया। फिर तो बेरोकटोक लडाई जमी। झडे के डडे हथियार बन गये। जुलूस म थे, उनकी सख्या अधिक होने के कारण सडक पर थे उन्हें भागना पडा।

पाच मिनट ही जो भागे थे वे वापिस आये। अब उनका दल बडा हो गया था। गलिया मे से नये साथियो को लेकर वे आये थे। हाथो मे कोकाकोला की बोतलें थी। दो बम भी। जोरदार धमाके हुए। बोतलें फूटी। किसी के सिर से लहू टपका। भागने की बारी अब जुलूस वालो

का थी।

क्षणभर मे सडक पर सन्नाटा छा गया। दूकाने बन्द हो गयी। लोग तितर बितर हो गए। मारे स्वर शात पड गए। केवल युद्ध करने वालो की हाकें-ललकारें सुनाई देती रही। मकानो की छतो पर तमाशा देखने लोगो के झुड इकट्ठे हो गए।

किसी ने पुलिस को टेलीफोन कर दिया था। पुलिस की गाडी को घटना-स्थल पर पहुचते सहजरूप मे आधा घटा तो लगता ही है। पर आज भाग्य ठीक थे कि पुलिस जल्दी आ पहुची। पुलिस आयी और उसने हवा मे दो फायर किये और टोले भाग खडे हुए।

पर उस दिन से एक बात स्पष्ट हो गयी थी कि इस सडक पर किसी भी क्षण लेनिन और माओ समर्थकों के बीच युद्ध छिड सकता है। कोई भी अप्रिय घटना घट सकती है। जिस जवान का खून हो गया वह लेनिन-समर्थक दल का था।

उसका नाम निमाई था। इस तरफ उसका आना-जाना रहता था। कुछ लोग उसे पहचानते थे। उसके मामा का घर सडक के पास की गली मे था। मामा के यहा जाने के लिए उसे यही से गुजरना पडता था। वापिस लौटता तब कई बार निमाई यहा के लडको के साथ खडा रहकर एकाध सिगरेट पी लेता। पर वह था विरोधी दल का आदमी। जिस दिन जुलूस निकला और मारा मारी हुई उस दिन से निमाई का इस तरफ आना बन्द हो गया।

निमाई का खून छुरे से हुआ। ढेर होकर वह सडक पर गिरा तब चेहरा बिल्कुल विकृत हो गया था। एक पेट मे दूसरा पीठ मे और तीसरा गरदन के पिछले भाग म। पीछे की ओर के दो घाव भागते समय लगे थे। सडक पर के टोले ने उसे घेर लिया था। उस टोले का नेता आदीनाथ था। आदीनाथ वर्षों हुए बेकार भटकता था। आजकल छुरा चाकू जैसा तो उसके जेब मे हर समय रहता है। नये राजनैतिक प्रवाह उसके लिए

बहुत लाभदायक साबित हुए हैं। वह और उसके साथी क्या नहीं कर सकते ?

पहला छुरा आदीनाथ ने निमाई के पेट में भोंका। निमाई घाट खाकर जान बचाने के लिए दौड़ा। आदीनाथ के साथियों ने भागते निमाई को पकड़ लिया। दूसरी दो चोटें लगीं। निमाई लडखडाकर गिर गया। थोड़ा घिसटा। दो बार तड़फड़ाया और मर गया।

निमाई की जेब में पैसे थे। उसकी दायीं कलाई पर एक सस्ती घड़ी थी। घड़ी और पैसों के किसी ने हाथ नहीं लगाया। यह राजनैतिक हत्या थी। खून कर देने के पश्चात् खून करने वाले जैसे कोई सामान्य घटना घटी हो इस तरह सिगरेट का धुआँ उड़ाते इधर उधर बिखर गए। वे जानते थे कि पुलिस की गाड़ी आएगी तो उनके नाम बताने की किसी की हिम्मत नहीं होगी। ऐसी बेवकूफी जो करेगा उसे भी निमाई के रास्ते जाना पड़ेगा। और यदि शक से उनमें से किसी को पुलिस पकड़ लेगी तो उसे जमानत पर छुड़ा लाने के लिए दल का नेता तो है ही।

ऊँचे मकानों में रहने वालों को कुछ देर तो पता भी नहीं चला कि नीचे सड़क पर खून हो गया। पता नहीं चला, इसमें उनका दोष नहीं। गैलरी में खड़े रह कर देखा तो सड़क पर दस पन्द्रह लड़कों का टोला खड़ा दिखाई देता है। टोला किसी एक को घेर कर खड़ा है यह खयाल नहीं आता। पर ऐसे टोले तो यहाँ हर रोज दिखाई देते हैं। उस ओर नजर डालने की इच्छा शायद ही होती है।

खून हो गया और लाश सड़क पर गिरी इसमें जो भय फैला इस कारण सबका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। कुतूहल भरी नजरें लाश पर स्थिर हुईं। जो गैलेरी में नहीं खड़े थे वे भी दौड़ आये। खून देखकर कई स्त्रियों को उबकाई आयी। पर गैलेरी में से कोई हटा नहीं। क्या हुआ, किसका खून हुआ किसलिए हुआ—प्रश्न एक गैलेरी में से दूसरी में कूदते दूर तक फैल गए।

एक महाशय ने दूसरे के कान में कहा, "पिछले कई दिनों से जो हो रहा था वह देखने के बाद ऐसा कुछ होगा, ऐसी आशंका तो थी ही।

क्या हो रहा था ?

सड़क के पास फुटपाथ पर पोस्ट-ऑफिस का बड़ा मकान है। उसकी लम्बी सफेद दीवार पर तरह-तरह के विज्ञापन अंकित होते रहते हैं। नामर्दी दूर करने की गोलियां, केशवर्धक तेल, मकान किराये पर देना है। सरकारी इमारत है। किसी को चिन्ता नहीं उसके रूप रंग की। पोस्ट-आफिस शाम को बन्द हो जाय फिर पेंटर काम शुरू करते हैं। एकाधबार किसी ने रोकने की कोशिश की। पुलिस स्टेशन को भी रिपोर्ट की। पर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ा। पुलिस ने बात पर शायद ही ध्यान दिया।

उन्नीस सौ उनहत्तर के चुनाव के बाद इस शहर में माओवाद फैला। जोरशोर से फैला। एक सुबह लोगों ने देखा कि किसी ने पोस्ट आफिस की दीवार पर के विज्ञापन मिटा डाले हैं। जहां विज्ञापन थे वहां माओ के चेहरे चित्रित कर दिए हैं।

किसकी हिम्मत थी कि माओ का चेहरा मिटा कर ऊपर केशवर्धक तेल का विज्ञापन करे ? लड़के सामने सड़क पर ही खड़े रहते थे। कोलतार की बाल्टी जो इस तरफ लेकर आया वह मार खाये बिना नहीं रहने का।

अब दीवार पर माओ ही माओ है। पिक कैप, चौड़ा नाक, छोटी-तीखी आँखें, नीचे बड़े काले अक्षरों में लम्बे स्लोगन लिखे हैं। स्लोगनों में जनता को, मजदूरों को, कृषकों को, आगामी हिंसक क्रांति में सक्रिय भाग लेने का आमन्त्रण है। यहां की पुलिस दीवारों पर के चित्र मिटाने में डरती है। या उसके प्रति लापरवाह है !

जुलूस निकला और मारामारी हुई उसके दो दिन बाद एकाएक पोस्ट-ऑफिस की दीवार पर माओ के साथ लेनिन भी दिखाई दिया। नुकीलीदाढ़ी, विशाल ललाट, खुला सिर। अवश्य कोई देर रात गए बना गया होगा। यह केवल मजाक नहीं थी। खुली चुनौती थी।

सड़क के छोकरे आगबबूला हो उठे। कोलतार घिस घिसकर उन्होंने लेनिन का चेहरा अदृश्य कर दिया। उसके स्थान पर माओ का नया अधिक बड़ा चेहरा चित्रित कर दिया। फिर विरोधी पक्ष को खुली गालियां निकालीं।

विरोधियों की ओर से छुट-पुट पत्थर आए। जवाब में उन्होंने भी फेंके। पर उस दिन बात इससे आगे नहीं बढ़ी। सब शांत हो गया

रात हो गई थी। सड़क की दूकानें अभी तक खुली थीं। कोई-कोई बन्द होने लगी थी। निमाई अपने मामा के घर से वापिस लौटने लगा। आजकल वह इस ओर कम ही आता था। और आता तो जल्दी वापस लौट जाता।

आदीनाथ उसके रास्ते में आड़े आ खड़ा रहा। दूसरे लड़कों ने उसे घेर लिया।

आदीनाथ ने उसे ललकारा, 'ऐ हम पूछते हैं उसका सच सच जवाब दे।"

अकेला होने के कारण निमाई डरा। पर फिर उसने हिम्मतपूर्वक पूछा, "तुम मुझ से कुछ पूछना चाहते हो ? क्या पूछना चाहते हो ?"

'तुम्हें ही तो पूछते हैं, तू ही तो चंगुल में फंसा है।"

'चंगुल में फंसा है" का अर्थ निमाई समझता था। इस शहर की सड़कों पर कितने ही विशिष्ट शब्द बोले जाते हैं और यहाँ बसने वाले उनके अर्थ ठीक से समझते हैं। शायद निमाई को अफसोस था कि वह इस ओर आया। थप्पड़ मुक्के पड़ेंगे, जेब में है वह लूट लेंगे, हाथ की घड़ी खोनी पड़ेगी।

वह लुटने और मार खाने को तैयार हो गया। "क्या पूछना है तुम्हें ?'

"रात को यहां दीवार पर तेरे लेनिन का चित्र बना जाने की हिम्मत किसकी है ?'

'क्या ?"

'आखें फूटी हुई हैं ? दीखता नहीं ? सामने दीवार पर।"

मैं नहीं जानता।'

"तू क्या जानता है और क्या नहीं जानता यह हम जानते हैं। बोल, सच बोल दे। कौन है वह ? श्यामल, कार्तिक, नीताई जो भी होगा हम उसे गंगाघाट उतार देंगे—खच्च !" आदीनाथ के हाथ में छुरा चमका।

निमाई चुप खड़ा रहा।

"यह दीवार हमारी है। इस पर कोई भी दूसरा चित्र बनाने का नतीजा क्या होगा, पता है?" आदीनाथ गर्जा। उसकी आखें लाल थी। उसके साथियो के हाथ गम हो रहे थे।

'मैं केवल अपने विषय मे ही जानता हू। मैंने कुछ नही किया।" जो होने वा था उसकी आशका अनुभवता निमाई बडबडाया। उसकी आवाज फाकी थी।

'अबे, य तूने नही किया तो तेरे दल वाला न तो किया है न?" आदीनाथ के एक साथी ने निमाई को धक्का देकर कहा।

'जो भी हो, उसकी कीमत हम तुमसे वसूल करेंगे।" आदीनाथ के स्वर मे क्रोध था।

निमाई बेचैन होता जा रहा था। उसने घेरे म से बाहर निकलने का यत्न किया। एक जने ने उसे हाथ पकड कर वापिस खाचा। "जाता है कहा, व?"

एक ने तमाचा जड दिया। निमाई ने गले से थूक बमुश्किल नीचे उतारा।

आदीनाथ और उसके साथी रात के अधेरे मे भयानक आखें चमकाते रहे।

"मुझ पर हाथ उठाने का परिणाम अच्छा नही होगा।" निमाई जोर लगा कर बोला।

आदीनाथ तिरस्कार भरी हँसी हँसा। "अच्छा! अब तो यह बेटा भी देखेगा कि हम क्या कर सकते है?"

और पलक झपकते ही छुरे चल गए।

निमाई की लाश सडक पर गिर पडी।

खून यो आख झपकते ही हो सकता है एसी तो बहुतो को कल्पना भी नही थी। मरनेवाला उनका रिश्तेदार नही था, पर हत्या हो गए एक आदमी की लाश को देखकर उनके चेहरे गुमसुम हो गये। लोगो न कहा कि आजकल के लडको को छुरा और बम चलाने के लिये कोई भी

बहाना पर्याप्त है। एक या दूसरे राजनतिक दल के सरक्षण म गुण्डा और आवारा लडको के सिर तो ऐसे सूज गये हैं कि उनके माग मे जो आया वह मौत के घाट उतर गया समझो। इस किस्से मे ही देखिये न, विवाद तो मात्र दीवार पर एक चेहरा चित्रित करने का ही था। इतनी सामान्य बात पर छुरा मार दिया। कौन जाने यह सब कहा जाकर रुकेगा ?

कानून कायदे की खुले आम अवहेलना हो रही है। देश के नताओं का अपमान होता है। अजी साहब, दो दो रुपये म बम बिकते हैं। आठ दस बप के लडके छुरा चलाना सीखते हैं। ट्रामा और बसो मे माओ के चित्र बन हैं। जिसे देखो वह नक्सलवादी है। गली गली मे आवारा लडके अड्डा जमा कर खडे रहते हैं। आदमी का खून हो जाना, यह तो सामान्य बात है। क्या नही होता आजकल ?

लोग कहते तो बहुत कुछ थे, पर सब कुछ ही दबी आवाज मे। सडक पर घूमते "दादा" की आखें उसके सामने कडी हो, यह कोई नही चाहता। लोगो की हालत गैस निकले हुए गुब्बारे जसी है। अच्छा या बुरा, जो कुछ इन सडको पर और गलियो मे होता है उसे मुह ढीला लटकाकर, थोडा कचकचाट कर स्वीकार लेते हैं। क्या हो ?

लाश को एम्बुलेंस ले गयी और सडक गटर के पानी से साफ हो गई। इतने म दूकानें फिर खुलने लगी। फुटपाथ पर राहगीर चलने फिरने लगे। बहुत जल्दी सारा "नॉर्मल होने लगा है। पीपल के पेड के नीचे कुर्सियों पर पैर लम्बाकर कान्स्टेबल बठे है। रात भर बैठे रहेंगे।

"अब रात भर कोई अप्रिय घटना घटने की सम्भावना नही "

"चलो निराति हुई "

निराति हुई ! निराति हुई ! ।

निराति मानने वाला के स्वर मे विश्वास नही, अव्यक्त डर है। भय है। आशका है। किसे पता किस समय फिर वापिस उसकी गर्दन पर पसीने की बूदें उभर आयी है। वह लम्बी जभाई लेता है। और कमरे मे लौट जाने से पहले गैलेरी से एक क्षण नीचे सडक पर झाक लेता है। कान्स्टबल बैठे है। उनसे कुछ दूर एक बिजली के खभे का सहारा लेकर आदीनाथ सिगरेट का धुआ उडाता खडा है ☐

जयती, अच्छा आदमी है

ज्योतिष जानी

जयती मेरा दूर का पडोसी है। दूर का इसलिये कि उसके और मेरे बीच एक अहमदावादी पोल का अतर है। मैं रहता था कीडीपाडा की पोल मे और वह रहता है मकाडापाडा की—हमारा मिलन इन दो पोलो के किस नाके पर, कब किस समय हो जाय यह कुछ कहा नही जा सकता। पर सयोगवशात दो एक दिन खाली निकल जाय तो इस मिलन के समय जयती द्वारा "दर्शन" शब्द का प्रयोग अवश्य होता ही। वह कहेगा "लो, आज तो तुम्हारे दर्शन हो गये", या "तुम्हारे दर्शन तो अब दुर्लभ हो गये है", या "इन आखो को दर्शन देते रहना।" और फिर तो "इस इतनी उम्र मे काजल का गाढा लेप करते हो, यह सुदर नही दिखता" से लगाकर 'मेरी भाभी की फरियाद बिल्कुल गलत नही, मेहरबान, किसी दिन भी शाक की थैली उठाकर आते मैंने तुम्हें देखा नहीं" से लेकर "काग्रेस का तो राज्जा, चूरा हो गया' से उठाकर और यकायक अचूक विषाद योग मे पहुच जायेगा "इस की डावाडोल परिस्थिति देखते हमारे जीवन मे कुछ सत्त्व रहे इस बात मे कोई दम नही। थैंक गॉड, हमने तो आप्टि-मिज्म का ऐसे व्यवस्थित रूप मे विकसित किया है कि जीवन मे टूट नही आ सकती।'

विषाद योग का अध्याय शुरू होते ही मेरे पैरो को खुजली आती। और आखिर मे बिल्कुल हल्के फूल बने मन "चलो, आज तो मधई हो जाय' और एक सरस मधई पान

देता। अलग होत समय (पोल सारी गुजाकर) कहता रहता, "ए य, दशन देते रहना।"

मघई पान मे धीरे धीरे मुझे जयती के आप्टिमिजम का स्वाद आने लगा।

जयती की चाल चींटी जैसी—चीटीवेगी। सडक पर उफनते जनसमूह के बीच जगह खोज निकालकर वह उसमे छिप जाता। और आहि स्ते, आ हिस्त डग भरता, कुछ देर रुककर फिर चलकर, फिर रुककर, कभी झाककर, कभी तनकर, दूकानो के बाड पढते पढते आगे पीछे, पीछे-आग बढता रहता। और इसी तरह अलग-अलग जनसमूहो का स्पश पाते हुए आध मील दूर अपनी रेवडी बाजार की घडीसाजी की दूकान पहुच जाता। और आख के ऊपर-नीचे के कोनो म गोलाकार मेग्नीफाइग काच का टुकडा लगाकर एक के बाद एक घडी ठीक करता जाता।

एक बार गुडफ्राइ डे की छुट्टी थी। मैं उसकी दूकान जा पहुचा। मेग्नीफाइग "ग्लास" मे से उसने अपना स्मित बिखेरा। आसपास हिलते घडियो के लगरो मे उसके स्मित की रेखाए उलझनी फसती रही। मेरी फेवरलूबा मैंने उसे दी और कहा, "जरा आग दौडती है।" मेरी फेवरलूबा दुरस्त करते करते वह बातें करता रहा। आप्टिमिजम के शिखर पर से दो बार विषाद योग की गहरी खाई मे धक्के जाने के कारण दो मघई उसे खिलाये। एक घटा और तीन मिनिट म फेवरलूबा दुरस्त करके उसन मेरे हाथ मे थमा दी।

गुडफ्राइ डे का आधा दिन देखते ही देखते गुजर गया था। इसके बाद जयती के विशेष आग्रह से रेवडी बाजार मे नई खुली हुई होटल मे जलेबी की गोल सुनहरी कतली और आधी चाय मैंने 'गेस्ट' के तौर पर ली।

"आज तो राज्जा, तुम मेरे गस्ट हो" ऐसा कोई वाक्य आय तो मै अवश्यमेव निश्चय कर लेता हू कि आचमन करन की धन्य क्षण आ गई है। मेरी अनिच्छा होने पर भी शब्द-शब्द की मन मे प्रतिध्वनि होती है माधवाय नम दूसरी बार केवल मन ही मन बोला जाता हा इस तरह यह वाक्य प्रस्तुत होता है—जरा धीमी धीमी आवाज से 'आज तो तुम मेरे गेस्ट हा। (केशवाय नम) और तीसरी बार कोई अपूव ज्ञात दशन

होना हो ऐसे आकाश या फिर कमरे की छत के सामन देखकर गभीर आवाज से अपूव आनन्द से लबालब उफनती गूज के साथ कह देना है "आज तो राज्जा तुम मेरे "

इस स्वागन आचमन के बाद मैं जयती से विलग होऊ तब ऐसे ही हल्के फूल जैसे मन से मघई पान देते हुए कहता रह, "दशन देते रहना "

आफिस से मेरे आन का समय और खाना खाकर पोल के नुक्कड पर पान खाने जाने का मेरा और जयती का समय एक सा चलने लगा। पिछले तीन चार दिन से, पोल के नुक्कड पर लगा महानगर परिषद् का पाल्ट-लैम्प अधा हो गया था। इसका फायदा उठाकर मैं खिसक जाता था। घर जाकर, खाना खाने के बाद झूले पर झूलते हुए मन मे राज थोडा गिल्टी गिल्टी जैसा भी लगा करता था। पर चौथे दिन तो उस किनारे से ही थोडा चौंका डाले ऐसी आवाज आई 'तुम्हारा अगड-बगड मैंने पढा, राज्जा' और फिर मेरी कविता का सपूण सटीक भाष्य मैंने उसके मुह से सुना "यह क्या तुम्हारी कविता है ? अहमदाबाद म रहना हो तो कुछ गधे खरीदो क्या समझे ?" उसकी आवाज की टोन परखने मैं थोडा मौन रहा ही वॉज ऑल सीरियस ! "अहमदाबाद म तो एसे गधा न सच्ची कवितायें बनाई हैं। देखिए महरबान ! यह गधे नही और एसे महाकाव्य जैसे आलीशान मकान हो। सत्य ही कहता हू। ऐसी बनावटी जरी कविता लिखन की अपक्षा तो गधे खरीद लोग तो थोडे ही समय म धरती पर तुम्हारी असल कविता उठ खडी होगी।"

मैं कुछ बोला नही इसलिए वह हस पडा। पुराना फटा कनस्तर जस खाना खाता ठुक गया। मुझे कहा, 'बुरा लगा, राज्जा ? मैं जरा मजाक करता था।" (तो, ही वाज नॉट रीयली सीरियस) आचमन के लिए मैं रुका। और बुरा लगा राज्जा (केनवाय नम) बुरा लगा (गाबिन्द नम)।

मुद्दे की बात कह दू तो अपने यानी तुम्हारी कविता म "आप्टि-मिज्म' दीखता नही हो उस क्या कहत हैं—प प स प म " मैं बात पढा 'फ्रस्ट्रेशन"। 'हा—हा ऐसा ऐसा ही है सारा इस तुम्हारी कविता म ' "अपने का मानो राज्जा, कविता म आप्टिमिज्म "

(केशवाय—माधवाय—गोविंदाय) पुराना फटा कनस्तर दुरस्त हो गया या हसते हसते मजाक करते लुढकता विदा हुआ। उन दिनों जयती अपने हाथ मे एक किताब उछालता रहता था। मैंने देख लिया "मीट यॉरसल्फ एज यू रीयली आर" डिस्कवर यॉर पर्सनलिटि एंड केरेक्टर (अपनी सही तस्वीर को तुम पहचानो तुम्हारे व्यक्तित्व और चारित्र्य को खोजो)।

बैंक का काम बहुत अटपटा होता है। मन खिंचा हुआ रहता है, एक के बाद एक काम मे जुटा हुआ रहना पडता है, इसमे जयती तो क्या साक्षात ईश्वर भी आ जाये तो टालने का मन होता है, और इन दिनों डॉक्टर ने चेतावनी भी द दी "(कम डाउन कूल डाउन)—"सावधान रहना। बी पी हो जायेगा। ऐसा न हो तो छुट्टी ले लो। पर काम का दबाव और बैंक मैनेजर बनने के आल चासज तिस पर क्लोजिंग के दिन।

जयती एसे ही एक दिन बक आ चढा। उसक सामने देखे बगर मैंने पानी का गिलास रखवा दिया। लेजर चेक करते-करत "चलो, तब जाऊ, मेहरबान।" "बहुत काम म लगते हो राज्जा, जाऊ, तब" जैसा सुनने कान बेकरार हो रहे थे। पानी पीया जा चुका था। जयती बैठा ही था। चुपचाप—सुनमुन। मैंने उसके सामने तो देखा ही नहीं। चाय का कप *उसके सामने रखवा दिया गया था।* चुपचाप। *उसका आप्टिमिज़म* (आशावाद) मुझ म महज थिरका। 'चलो, तब जाऊ " का। जयती अभी तक बैठा था। मैंने जल्दी से चारेक चैकों पर दस्तखत कर दिये। टोकन मिला लिय। फारेन एकाउंट पर लाल टिकें हो गइ। जयती अभी तक बैठा था। बस। चु प चाप। एक धीमी आवाज सुनाई दी। मैंने ऊपर नहीं देखा। संक्षिप्त सार समझ लिया। चढे हुए मकान किराए के मकान मालिक को चुकाने के लिए छ सौ के बक *के कडकडात नोट मैंने उसके हाथ म रख दिये।* चुपचाप। जयती चला गया था। कुर्सी खाली थी। "चलो तब जाऊ ' कब बोल गया वह ? मैंने मन ही मन आचमन कर लिया।

पोस्ट लैंप की आखें आए हुए एक सप्ताह हो गया। जयती दिखाई नहीं

दिया था। दूसरे दो-एक दिन नजर दौडाई, कान खडे किये। धीरे-धीरे छ सौ रुपये छ सौ चींटा की तरह घटने भरने लगे। चार अका का बमुश्किल इकट्ठा किया हुआ बक बैलेंस गिनती के तीन अका की मजाक जैसा बन गया। अब जयती के "दशन" करने मैं चारा ओर नजर फेरने लगा मकोडीपाडा की पोल म जयती के घर—ताला, पोल का कोना—शून्य। रेवडी बाजार म घडी की दूकान बन्द। घडियो के लगर और पान वाला

उसके यह शब्द जबरदस्ती याद आने लग 'बक गॉड, हमने तो आप्टिमिजम को ऐसे व्यवस्थित रूप म विकसित किया है "

"दशन" शब्द को आकाश के असख्य तारा के बीच दाब दिया। आचमन बगर गला सूखने लगा और जान लेवा छ सौ चीटे एक साथ चटके करने लग फिर भी कभी-कभी अन्तर म से उठकर आवाज कूद पडती जयती अच्छा आदमी बोतम मिला और मौका देखकर छ सौ चींटा की चमकीली वेदना को मैं भूल गया। खाना खाकर पान खाना शुरू किया। मघई, स्पेशियल मघई।

पान की दूकान के गल्ले क पास की गद्दी पर बैठ गया हू (राज्जा)। पानवाले न छ नीलेनोट हाथ म देते हुए कह दिया है "जयती भाई के " मैं अभी तक विश्वास नही कर सका। किन्तु पानवाले के दिये हुए छ नोट झिलमिलाती बिजली की झिलमिल होती सी जेब मे पडे हैं। गोन कुछ हो गय ग्राहका के पान बनाने म पानवाला मशगूल है। मेरा मघई भी अभी तयार हो जायगा। जयती को दशन देने ही बैठा हू, 'ऑप्टिमिज्म' क आश्रमा करने की अब थोडी-सी ही राह देखनी पडेगी। ज्यती आना ही होगा, मारे मारे, ऑटोमटिक घडी क मकड के कांटा की तरह—सबके जाने हैं जयती अच्छा आदमी है ज्यती अच्छा जयती "

'जयती भाइ के भाई आज दोपहर ही आकर "मघई सज्जन से मुह म रखकर पुनम्नाना शुरू करता हूँ और पानवाला कहता है "जयती भाई क भाई दोपहर ही आकर गय " वह फिर से बोला और एक जभाई लेकर आगे कहा, "और कहा कि जयती न तो जिंदगी म ऊपर "

मैंन मघई थूक दिया। इतना बेस्वाद होता मघई, ऐसी मन कभी कल्पना भी नहीं की थी।

पाप

सुहास ओझा

तब मैं लदन मे मैडिसिन की स्टडी करता था। मेरे दोस्त मुझे 'मस्त-मौला' कहते। पर मैं अथात कौन, यह पूछ रहे है ? मेरा नाम है विप्लव। पर आप मुझे 'विप' कहगे तो भी चलेगा। उस वक्त मेरे दशी विदेशी मित्र मुझे 'विप' के नाम से जानते थे।

थोडे ही समय म मैंने काफी ऐस मित्र बना लिए। फॉरेन म रहकर शिक्षा प्राप्त करती एक दा हिन्दुस्तानी स्त्री मित्र भी हा गयी। मैं पाश्चात्य जीवन मे बहुत घुल मिल गया था। 'आऊच' जसे उद्गार तो ठीक पर पश्चिमी शराबो की मिलावट और खान-पान की पसदगी मे भी मुझे काफी अधिक निपुणता मिली थी। थाडे म कहूँ तो वह एक 'सोश्यल सक्सैस' था।

पर मेरी इस कीर्ति म एक कलक सा भी था। मेरी किसी खानदानी पाश्चात्य युवती के साथ मैत्री नही हुई थी।

अरे, इसमे क्या बडी बात है ?' मैंने शेखी बघारी थी। यह तो विचार किया नही इसीलिए। नही तो क्या मुझे स्त्री मित्र नही मिलें ? मुझे ! '

"पर वे चीप वेट्रेसें नही हानी चाहिये खानदानी लहू की होनी चाहिए।" मित्र ने कहा था—"लगाआ शत ?'

'शत' मैंने आत्मविश्वास से जवाब दिया था और मेरे शब्दा मे कहूँ तो मैंने साधना शुरू की थी योग यान एकाग्रता, एकाग्र की हुई इच्छा-

[illegible]। इन एकाग्रता म मन ऐसी [illegible] ना पाये कि उसकी भाग म ही
[illegible] [illegible] नष्ट हो जाय। मा पर एक-दो किताबें पढ़कर मैं
[illegible] मित्रों के साथ बहस करता क्योंकि उन समय इग्लैंड के गुर [illegible]
[illegible] में [illegible] का बाग दुरवहार था।

इसी कारण योग की एकाध किताब हाथ म रखकर मैं एक रेस्तरां म
नियमित रूप से बैठता रहा।

उस शाम भी मैं इसी तरह बैठा था। सिर मन्ना डाले ऐसा संगीत
बनता था, और 'पेयर' नाचते थे। उनके हाव-भाव, अग सचालन और
नैरन्तर्य को देखना आधा 'तट पर खडा देखे तमाशा' जैसा तो आधा 'ईशप
के उस गियार' जैसा भाव मैं महसूस कर रहा था

तभी मेरे सामने बैठी हुई एक पाश्चात्य लडकी मेरी ओर देखकर
मुस्कुरायी। यह इतना अधिक अनचीता था, और ऐसी खूबसूरत लडकी
मेरे सामने मुसकुराये इससे मैं इतना घबरा गया कि क्षण भर के लिये
मुझे लगा कि, यह सत्य नही स्वप्न है। केवल एक क्षण के लिये मेरे
आस पास की दुनिया, होटल, टेबलें, ड्रिंक्स की प्यालियाँ, नाचते युगल,
सगीत, वेट्रेसें और बडी टेबल के पास खडा हुआ बार मैन सभी अदृश्य
हो गये सभी सदर्भों से विहीन यह लडकी अपार्थिव पृष्ठभूमि पर
अकेली, किसी अजब स्वतेज मे नहाती, मेरी आखो के सामने चमचमाती
रही।

वह मेरे तनिक और नजदीक खिसकी। उसके गम सान से मैं भान मे
आया, जैसे कि एक ऊँचायी से धरती पर उतरा "एक्सक्यूज मी कह
कर उसने बात शुरू की। "भारतीय है ?"

मैंने सहमतिसूचक गर्दन हिलायी।

"कैसा अदभुत !" वह बोली। मेरा नशा उतर गया। कोई बोडम,
अद्ध पागल लडकी लगती है। मुझे भारत का निवासी होने म भी कौन सा
अद्भुतपन था। इतने म तो उसने दूसरा प्रश्न फेंका—'तुम्हे यह [illegible]
पसद है ?"

"हा " मैंने जरा अचकचाते-अचकचाते जवाब दिया। [illegible]
लडकी ! पर मुझे वह भायी। उसका दिमाग चपल [illegible]

से वहा दौड भाग करना था।

"औपचारिकता की खातिर, मुझे खुश करने को हा मत कहना। मुझे इस सगीत के प्रति घृणा है। यह क्या सगीत है ? यह तो जगली लोगो की कामोत्तेजना के लिए कोलाहल है। चला बाहर, किसी शात जगह पर "

एक क्षण मैं झिझका। मैं विदेश म था। मेरे जसे अनजान आदमी को ऐमी युवती किसी भूल भुलैया मे फसा डाले यह अशक्य नही। पर वह लडकी तो, जैसे मैं उसका कहा टाल नही सकता, ऐसे विश्वास से आगे चल दी। सम्मोहित की तरह मैंने उसका अनुसरण किया। उसे कोट-सा पहनाते, उसके कधे छूते लम्बे बाल सहज फरके और मुझे छू गये। मुझे कुछ खटका। ऐसी खूबसूरत, सुघड लडकी और बाल कसे अस्त-व्यस्त रखती है। उसका आधा चेहरा बालो से ढका हुआ

और वह जैसे स्वय से सकुचा कर चल रही है कुछ गुप्त रख रही है, मैंने सोचा।

पर इस मुक्त देश मे उसे ऐसा वह कौन सा रहस्य छिपाना है। और आखें बहुत ही भोली और निष्पाप हैं बालक या सत जैसी निष्पाप

बाहर हम एक जगह बठे। वह भारतीय सगीत के विषय म बातें करती रही। भारतीय सगीत मुझे भी बहुत प्रिय है इसलिए मजा आया। बातो म, यद्यपि खास दम नही था। बासती साझ हो और वह भी शनिवार की और एक युवक एक युवती से मिले तब सगीत की बातें नही ही करता। परन्तु कौन जाने कसे, मैं बातें सुनता रहा, बातो का प्रवाह बदलने के बदले उसमे सराबोर रहना मुझे अच्छा लगा उसका एक वाक्य मुझे अच्छी तरह याद है। "कभी-कभी भारतीय सगीत सुनते हुये मैं अनुभव करती हूँ बहुत ही प्रबलता से अनुभव करती हू क्या कहू ? शायद तुम मुझे पागल मानोगे यहाँ तो सभी मुझे पागल ही मानते हैं कि कि मेरे किसी पूवजन्म म मैं भारत मे थी, और वह भी एक आश्रम म और तब "

पर वह वाक्य पूरा करे इससे पहले ही मैं खिलखिलाकर हँस पडा। वह रुक गई। "किसलिये हँसते ह ? '

"तुम सचमुच ही ही पूर्वजन्म मे विश्वास रखती हो ?"

" पर यह सभव नही ? क्यो ? बहुत बार एक ही जन्म म भी ऐसा होता है कि बचपन की नन्ही नन्ही अधखिली कलियो जैसी स्मृतिया कौन जाने कैसे समय के मलबे के नीचे दबकर पडी रहती हैं। सुन्दरता की एकाध पवन लहरी चलते ही वे जाग उठती हैं बर्फ की फुहारें गिरने लगें और मुझे क्रिसमस और मेरे गाव का गिर्जा और टेकरी और टेकरी की तरफ दौडी जाती माँ और उसका लाल सुख गम कुछ खुरदरा हाथ और गम कोट का मखमली किनारा और मेरा गम पहनावा और सारा ही बचपन और गिर्जे की सीढिया पर पैर रखते उसके सुगधित अद्ध अधकार म विलीन हो जाती मैं अपन आपको मोमबत्ती के झिलमिलाते प्रकाश म क्रुस पर चढे हुये क्राइस्ट सब कुछ तादश्य हो जाता है मुझे लगता है कि "

"यह तो तुम मानस शास्त्र जानती होगी केवल असोसियेशन "

"नही, नही " वह बहुत ही दृढतापूर्वक बोली और उसने सिर धुना और फिर एक ओर से उडे हुये बालो को सावचेतीपूर्वक ठीक करते वह मेरे सामन अत्यत आद्रता से, भीति से देखती रही। उसकी आवाज नरम, लगभग दीन हीन कहिये न, हो गयी। "ऐसा भी हो, मैं तो कुछ भी जानती नही। तुम योग विषयक, अपने पूर्वजन्म के, फिलॉसफी के बार मे कुछ जानते हो ? मुझे विश्वास था भी मुझे अपनी मैत्री द सकोगे ?"

मेरी विषम स्थिति थी। वह मेरी मैत्री मागती थी क्योकि मेरे हाथ मे योग की तीन-चार किताबें थी और वह मान बैठी थी कि मैं उसे उसकी साधना म मददरूप हो सकूगा। वास्तव मे मैं एक निरा कठोर, निर्लिप्त पात्र मात्र था। जिसमे निमल गगाजल भी समा सके, मदिरा भी।

और दूसरी ओर इस खूबसूरत अकेली लडकी की मत्री नकारने की मुझ मे हिम्मत नही थी।

"थोडा बहुत जानता हू हम फिर कभी मिलेंगे तब समझाऊगा।" मैंने 'नरो वा कुजरो वा' जसा जवाब दिया और मन ही मन मे भारत का तीन चार गालिया भी चेप दी। कैसी उस देश की आबरू ! पात्र ठेठ होठो तक आया पर कुछ पीने को नही मिला।

दूसरी बार उससे मिला तब वह मिलते ही खिलखिलाकर हँस पडी। "कम हो तुम, दोस्त ?" कहकर वह मुझे अपनी टेबल के पास घसीट ले गयी। 'मजे म।" मैंने जवाब दिया पर मैं मन ही मन घबराया। यह क्या वही नटकी थी ?

"हम साथ नृत्य करेंगे ?" उसने पूछा।

"नृत्य ?"

"हा मैं बहुत अच्छा नाच सकती हू, पर तुम्हारा नाम क्या है ?"

'सभी मुझे 'विप कहते हैं।"

'और मेरा ल्यूसी "

"ऐसे धीरे धीरे क्यो चलते हो ? कैसा मस्त मादक सगीत है ? तुम्हारा लहू थिरकता नहीं ? तुम बूढे हो क्या ?" कहकर उसने मुझे स्टेज की ओर घसीट लिया।

हम दोनो नाचने लगे। नाचते-नाचते अचानक ही मेरा ध्यान गया आज उसने नये ही तरीके से बाल सवारे थे। उस दिन ढका हुआ उसका आधा चेहरा आज खुला था।

'लाइफ इज शाट बट ग " रिकाड बज रही थी। वह तो आज पागल ही हो गयी हो ऐसे नाचती थी। उसकी यह छटा, स्फूर्ति, मुद्राए और ताजगी देखना मैं तो मुग्ध ही हो गया। यह स्त्री नहीं समुद्र के अथाह जल मे थिरकती मछली थी।

और उसकी जवा गम गम देह अब बार-बार मेरे नजदीक आती थी। थोडी देर मे मैं होश म होने पर भी जैसे बेहोश हो गया। विचार अवरुद्ध हो गये। मैं स्वय, 'लाइफ इज शोट बट गे ' की मादक सुरावलि की एक तरग मात्र बन गया।

हम टेबल पर आये तो भी वह अभी तक जसे नशे मे ही थी

और फिर दुबारा हँस पडी, "खूब मजा आया, नही ? ऐसा आनन्द मुझे कभी भी आया नही। आधी रात होने को आयी है। मुझे घर छोड दोगे ?"

और मुझे हिचकिचाता देखकर उसने कहा, 'वसे तो मैं स्वतन्त्र हूँ। पर घर एक बहरी बूढी नौकरानी है। डरना मत। कॉम्प्रोमाईजिंग स्थिति

मे नही डालूगी।"

मैं शर्माया। उसे घर छोडने गया। बार-बार उसके खिले हुये गुलाब जैसे गालो पर नजर पडती और उन्हें चूम लेने की एक तीव्र इच्छा जाग जाती। पर मैंने अपने आप पर काबू किया। मुझे इस विचित्र लडकी का डर लगता था। शायद प्रत्येक प्यार मे कुछ डर हो तभी तो उसका रूप धारदार-पैना बनता है।

उसका घर आया। बूढी नौकरानी ने उसे भीतर के कमरे म सुलाया। मैं लौटने को हुआ। वापिस आते वक्त छोटी बच्ची की तरह उसने मेरे गले म बाहें लिपटाकर कहा, "तुम्हारे सिवा किसी के साथ मैंने इतनी आत्मीयता नही महसूसी। तुम जानते हो कि मेरे पिछले जन्म का " और वह सो गयी।

तीसरी बार मैं उससे मिला तब वह काफी गभीर थी, और उसका चेहरा बालो से अधढका था। वह कुछ बोली नही।

"तुम यहा?" वह मुझे अचानक मिली इसलिए मैंने आश्चर्य से पूछा।

"तो और कहा जाऊँ?" उसकी आवाज की गहरी उदासी से मैं स्तब्ध हो गया। क्या हुआ होगा इस लडकी का? उसके कपाल पर तीव्र वेदना की रेखाए थी।

मैं उसके नजदीक गया।

"मुझे अकेली छोड दो। तुम्हारी जरूरत नही।"

"यह कैसे कहती हो लू?" मैं उसे 'लू' कहता था। "मुझ से नाराज हो?'

"मेरी तबियत ठीक नही, माफ करो" कहती वह बाहर निकल गई। मैं पीछे-पीछे गया। एक विचित्र आकर्षण मुझे उसके पीछे जाने के लिए प्रेरित कर रहा था।

हम बाहर निकले और मैं उसके हाथ से कोट लेकर जबरन उसे

पहनाने लगा, तभी उसके गाल पर से बाल हट गये।

मैंने एक गदा, लाल सुराखवाला, मवाद से भरा बडा सा दाग वहा देखा।

"यहा " मुझ से सिसकारी निकल गयी। मै अनजाने ही जरा दूर हटा।

"बस न ? देख लिया न जो देखना था वह ? जाओ जाओ, भले होकर अपना रास्ता पकडो। तुम्हारा यह काम नही। एक खूबसूरत उर्मिल यूरोपीय लडकी को फसाने के लिए इस तरह पीछे पीछे भटकोगे नही जाओ।"

"पर लू '

"तुम्हारे पास से मैंने कहा अधिक कुछ मागा था ? केवल मत्री तुम लपट जैसे पीछे पडे थे। लो, लो। देख लिया न लू को ? जाओ। कहती हूँ।" वह रुआसी होकर बडबडा रही थी। मैंने हाथ पकडा तो वह चिढ गई। "जा योगी, जा मुझे तुम्हारी घणा नही चाहिये।"

"पर लू, सुन तो सही, लू तू मुझे अब भी पहले जितनी ही अच्छी लगती है "

"तो चूम ले न मुझे है ताकत ? खीच ले तेरे पास, और इस गाल पर, इस दाग पर, तेरा चुबन अकित कर दे मैं तेरी ही हू तो "

मैं जडवत् खडा रहा।

"हट कायर नापाक अब मेरा पीछा मत करना इसमे सार नही " कहकर वह अकेली लडकी बरसती बर्फ मे अँधेरी रात मे चली गयी। कई देर तक उस सँकरी गली मे उसके सैण्डल की खट खट के साथ आत्मसात होते धीमे निश्वास मैं सुनता रहा। मुझे लगा कि, मैं उसके पीछे दौडकर जाऊ, उसे मना लू। पर एक विचित्र निलज्ज छुटकारे की भावना ने मुझे घेर लिया। 'अब तो बहुत देर हो गयी' कहकर मैंने मन तो समझा लिया।

दूसरे दिन रात मे अतमन को शात करने उसे फोन किया। उस नौकरानी ने फोन अटेंड किया "उसका तो पता नही। हा, वह जरा एबनॉर्मल है रोग वापिस उठा है। कोई डाक्टर यह कह सकता नही

कि वहुत भटकी है, हजारो पाउड खर्चे हैं ”

तीसरी शाम मैं उसके यहा गया। वह सोई थी। मैंने धीरे से उसके वाल ऊचे किये यह करते उस क्षण के भी एक सहस्रवें भाग म विजली की कौंध जैसी एक अनुभूति हुई जैसे कि इस क्षण मुझे कुछ कहना है वाक्य हृदय म है, पर वह होठो पर नही आता, और वह नही कहू तो कोई वडा अनिवाय अनिष्ट आ पडेगा। पर वह विफन-विफन गया मैंने वाल ऊँचे कर दिये। वह विकृत दाग सारे चेहर पर फैल गया था।

"कौन ? तुम ?" उसन आखें मूदे हुए ही कहा। यह आवाज बहुत भिन्न लगती थी। मैंने नौकरानी के सामन देखा। "नीद म बालती है !'

"मुझे पता था कि तुम आआगे। मेरे उद्धारक ! मेरे किस जन्म के पाप का यह चिह्न है ? तुमन क्या मुझे इस समूचे विश्व मे मुझ अकेली को तुम्हारे इस पात्र मे विकृत कर डाला है ? नही, नही, यह तुम्हारा ही चिह्न है पर तुमने मुझे ही क्या चुना ? मेरा उद्धार करन के लिए ? या भटकाने के लिए ? क्या करू कि जिसम तुम मुझे उद्धारो, अपन अक म ले लो, मुझे हलके से चमकर इस विरूप भीषण दाग को चन्द्रमा के कलक की तरह मधुर बना दो ? '

अचानक वह जाग गयी।

"तुम ?" उसन कुछ आश्चय स कहा। वहन, वाहर जा हम दोनो के लिए कॉफी बना ला।" कहती वह बैठी हो गयी।

"विप, मैं बहुत ही खुश हुई तुम आये इसलिए। पर काफी पीकर तुम वापिस चले जाना। मेरी साधना मे तुम्हारी उपस्थिति मे विक्षेप पडता है।'

"साधना ? कौन सी ? कैसी ? किसकी ? किसलिए ? और विक्षेप फिर कैसा ?"

'हल्के से, धीरे से, विप ! यह क्षण बहुत मधुर है ! क्षुब्ध न हो, क्षुब्ध न कर इसे।' वह मृदुता से बोली। मैं उसका यह नवीन, स्वस्थ, सुमधुर रूप देखता रहा। उसका आधा चेहरा अभी तक वैसा विरूप था पर जुगुप्सा प्रेरक नही था आख स झरती किसी अपार्थिवता न उसका

लौकिक रूप जैसे पलट डाला था। फिर मुझे, मैं और वह, किसी चलचित्र के पात्र हों ऐसी अनुभूति हो आयी।

"आज मुझे प्रभु का आदेश मिला। मैं उसकी प्रियतमा हूं। दूसरे सामान्य आदमी की प्रिया बनने के लिए मैं सर्जित नहीं हुई "

"पर यह तो पागलपन है ' मैं कहने लगा।

"जरा रुक, विप मेरी सुन फिर तुझे जो कहना हो वह कहना।' वह बोली। मैं चुप हो गया।

उसकी बात कुछ इस तरह थी। उसका रोग विचित्र था। कौन जाने क्से यह होता, फलता, और विकृत कर डालता और फिर एक भी चिह्न छोड़े बिना अलोप हो जाता।

वह मेरी धारणा से उम्र में बड़ी थी। बचपन से चर्च का उसे बहुत आकर्षण था। पहले तो वह बहुत ही खूबसूरत थी। जिस दिन माता पिता की इच्छा के विरुद्ध होकर साध्वी होने भाग निकली उसी दिन यह दाग दिखायी दिया। और विचित्र स्वप्नों की परम्परा शुरू हुई। उसे पता था कि यह दाग सामान्य न था, ईशु का कोई संकेत था। यह उसकी अशुद्धि का, पूर्व जन्म के किसी पाप का चिह्न था तो साथ ही साथ उस अशुद्धि के निवारण के प्रति आह्वान भी था

'यह सब बकवास है, लू तू निष्पाप है। तुझ जैसी भोली, उर्मिल लड़की पापी हो भी किस तरह सकती है? मैं तुझे चाहता हूँ यह एक गाल तो बहुत छोटी बात है लू सच्चा प्यार तो इससे भी कई गुनी अधिक कुरूपता जज्ब कर सकता है हम शादी करेंगे और भारत चलेंगे तू कहेगी तो बनारस में जाकर रहेंगे गंगा के किनारे, बस?" मैं छोटे बच्चे को पटाता होऊं ऐसे उसे पटा रहा था, पर मेरे मन में अनिवार्यता की निराशा छाती जा रही थी। किसी भावी करुणांत के बोझ तले मैं छटपटाता था

'बहुत देर से कहा विप यह तो सामान्य 'डिसंसी' की बात है जिसका प्रस्ताव पहले आये उसका स्वीकारना चाहिए। ईशु का प्रस्ताव पहले आया उससे छुटकारा पाने उस शाम मैंने तेरे आगे अपने आपको समर्पित किया था पर खैर जाने दे वह बात। अब तू बहुत लेट हो

गया है।"

मैं निराश हो वापिस लौटा रात जैसे सारा अपना वजन मेरे ही सिर पर डाल रही थी। जैसे गली के लम्बे-लम्बे वृक्ष सिर हिलाकर मुझे ही सकेत करके वापिस बुला रहे थे अस्थिर कदमो से मैं अपने घर की ओर बढा ।

भारत से पत्र आया। माता-पिता मुझे वापिस बुला रहे थे। एक उलझन भरी परिस्थिति मे से अनायास उबर गया इसकी खुशी मे व्हीसल मारता, पूरी रात की पार्टी के बाद भिनसारे वापिस लौटा घर पहुचा तभी फोन की घटी घनघना उठी।

"ल्यूसी याद करती थी ' आवाज आसुओ से भरपूर गीली थी।

एकाएक हृदय भडक उठा। 'थी ? यानी ? क्या हुआ है लू के' यह नही पूछ सका।

"पता ही नहा चलता। बहुत घबरा रही तुरत आओ तो बहुत अच्छा।'

मैं उसके घर गया। लू के कमरे का दरवाजा धकेला

लू सोई थी। पास मोमबत्ती झिलमिला रही थी। रिकाड पर कोई गभीर सुरावलि गूजती थी। लू के हाथ छाती पर कुछ निशान बना रहे थे।

मैंने नौकरानी को कमरे मे बाहर जाने के लिए सकेत किया।

लू का रूप पूर्ण सूय की तरह सम्पूर्ण दोपरहित चमकता था। उसके गुलाब जैसे कोमल, चमकदार बाल अपूव तेज स चमकते थे। उस समूची देह को चुम्बनो मे, मेरे अतर म जडकर, अमर कर देने की एक अदम्य आग मुझ मे जाग उठी पर लू चुप थी, लुप्त थी, शात और शीतल थी, उसे मेरी आग की जरूरत नही थी।

और अचानक ही कन आया स्वप्न सुगठित, सुदर बनकर अतर म एसिड के बिन्दुओ-सा आकार लेने लगा।

सोयी लू के चेहरे पर के बाल उठाते हुए मैं कह रहा था "लू यह तेरा पाप नहीं, पिछले जन्म का भी नहीं, इस जन्म का भी नहीं, यह तो समूची मानव जाति के सिर पर का अनन्तकाल का अभिशाप है। एक बार ईशु का लहू बहाने के बाद हम अपने निर्दोष और स्वल्प सुख का विस्तत उदार समुद्र से घेरकर मानव वेदना के बीच झूलते ही आये हैं झूलते ही रहे हैं न ही हो पाते ईश्वर के, न ही रहते इस दुनिया के। लू तेरे इस मथन म मैं तुम्हारे साथ ही हू। तू कहे तो तेरे गाल का दाग बनकर भी तेरे साथ ही रहना चाहता हू "

और यह वाक्य होठो से निकला नहीं था

मैं डरता था लू से, लू के दाग से और मैं बहुत लेट भी हो गया था।

उसके सपनो के क्षण मे उसका ईशु बन सका होता मैं पर ईशु बनना सरल नहीं हाड चाम से निर्मित होने का दावा करते मानव कटीले मुकुट नहीं पहन सकते।

मैं विज्ञान का एक विद्यार्थी था। पर किसी बगला कवि ने कहा है कि, ऐसे निश्वासो मे बिखरे हुए अनबोले शब्द, अनन्त आकाश के गुबद मे गूजते गूजते युगान्तरो के बाद भी, कभी तो प्रियजन के कानो म पहुचते ही हैं

मेरे शब्द पहुँचेंगे? □

नीरव और शहर

वकुल वक्षी

धीरे धीरे वरसती बारिस। आकाश मे बादलो से बनती विविध आकृतिया। इन आकृतियो का देखती नीरव की आखें बगीचे की झील की चिकनी सतह पर फिसलती आखें। दूर चच की बद घडी मे रुका हुआ समय। गाथा की भीगी देह पर फिरती आखें।

एक पुराने मकबरे के अहाते मे खडे होकर बाहर हो रही बारिश दखते हुए नीरव ने पूछा था

"ठड लग रही है ?"

गाथा कुछ भी वोली न थी। उसके चेहरे पर केवल एक मधु मुस्कान फल गयी थी। और मकबरे की गुबजी ऊचाई से एक कबूतर की पाखा की फडफडाहट सुनाई दी थी। गाथा बहुत ही नजदीक थी उसका अलग अस्तित्व ही न लगे इतनी अधिक नजदीक।

नीरव जब इस शहर म पहली बार आया तब उसने शहर का नक्शा देखा था। नक्शे म रास्ता की भूलभूलया शहर के शरीर पर शिराओ जैसी लगती थी। और वह भटका था इन्ही शिराओ म किसी रोग के कीटाणु की तरह। उसका सघर्ष हुआ शहर के साथ। और शहर के विराट रोग का अग बन गया नीरव। फिर उसकी शोध शुरू हुई। लोगो से खद बदते शहर म अकेले एकाकी पडे हुए नीरव के व्यक्तित्व की शोध। रोज सवेरे आईने के सामने खडे रहकर सभी अपना-अपना मुखौटा पहन लेते। एक मुखौटा जरूरी था—शहर मे रहने के लिये।

जीवन में गाथा का प्रवेश हुआ। नीरव को लगा जीवन के एक मोड़ पर वह खड़ा है। उसके व्यक्तित्व पर गाथा छा गयी। निरभ्र आकाश पर सध्या का रंग। वापिस लौटते पक्षियों की पंक्तियों में उड़ती हुई आकृतियाँ। अचानक खिल उठे पारिजात के फूल। गाथा के केश कलाप में ढका हुआ सूर्य। पलकों की पाल के बीच झील जैसी शांत आँखें नीरव ने देखीं। नीरव ने और भी बहुत कुछ देखा। शहर को नयी आँखों से देखा।

—आकाश में उड़ने का मन होता है?

—इस शरीर की शृंखलायें तोड़कर यह सब कुछ ही छोड़ करके शून्य में खो जाने की इच्छा होती है?

—ओस बिन्दु बनकर फूलों को बाहों में भींचने का मन होता है? निरुत्तर प्रश्न उठ खड़े हुए।

अर्द्धनिद्रा में जन्मी हुई अशरीरी इच्छायें और उन इच्छाओं का रंग। नीरव की आँखों के समक्ष असंख्य रंगों में कौंध कौंध गया शहर।

सुबह होती है और ट्रेनों की आवाज बढ़ जाती है। फैक्टरी का सायरन बजता है। नीरव उठकर फ्लैट के दरवाजे पर रखी हुई दूध की बोतल और अखबार लेकर भीतर आ जाता है। अखबार के शीर्षक पढ़ते पढ़ते एकाध जम्हायी ले लेता है। *बाथ रूम में ब्रश साबुन,* शेविंग का सामान सब कुछ व्यवस्थित रखा हुआ है। वाश बेसिन के ऊपर के आइने में नीरव का चेहरा अंकित होता है।

शहर की बसें लाल रंग की हैं और अलग अलग दिशाओं में बहुत सारे मार्गों पर चलती हैं। कई मंजिली इमारतें, कारखानों में काम करने वालों के क्वार्टस, कुछ बंद पड़े हुए फव्वारे। ऊपरी मंजिल की खिड़की में से नीरव यह सब कुछ रोज आफिस जाते हुए देखता है। बस में और रास्ते पर सभी *अपनी-अपनी दुनिया में उलझे हुए नजर आते हैं।*

शहर में रहने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी एक दुनिया सर्जित करनी पड़ती है और उसमें ही रसे पगे रहने का दिखावा करना जरूरी हो *जाता है टाइपराइटर की आवाज सुनायी देती है। चाय के खाली कप-*रकाबियों की आवाज मैनेजर के कमरे की घंटी की आवाज दूर चर्च में होती घड़ी की मीठी आवाज। झील की सतह जैसा स्वच्छ और स्निग्ध

गाथा का चेहरा। कुहरे की तरह जमी हुई जुल्फें। रोज एक शाम आती है—तालाब पर, वक्षों पर, गाथा की आखो मे। दिन भर की थकान, उतार जाती है यह शाम। और फिर पुन ऑफिस की वही बधी-बधायी नीरसता।

कभी कभी नीरव को उसका छोटा सा गाव याद आता। पास ही बहती नदी के कुहरीले मोड। गाव के मदिर की फरफराती ध्वजा। केवडे के वन की मादक खुशबू और इस मादकता मे रहते सापो का जहर। गाव की ऋतुए भिन्न थी

गाव की बारिश भी भिन्न थी। गाव के बाहर रास्ते के दोनो ओर पीले, सुगधविहीन आँवल के पौधो के फूलो की कतार थी। ग्वारपाठे के लाल फूल लगते थे—प्लास्टिक जैसे। महुए के खिरे हुए फूलो को गाव के लोग बीन बीन कर ले जाते और उनका नशा करते। महुए के नशीले फूल आधी रात का खिरते थे। किसी गीत की एकाध पक्ति याद आ जाती—महुआ टपकत आधी रात

यह सारा बचपन था—बडा होने के बाद समय-असमय उभरते दर्द की तरह भूतकाल याद आ जाता। शहर म आने के बाद भी, जीवन की गति बदल जाने के बाद भी, विचारो की कौध म वह गाव की स्वप्निल दुनिया मे पहुच जाता।

धीरे धीरे नीरव को लगा कि शहर उसके शरीर म प्रविष्ट हो रहा था। उसका रहन-सहन, उसके विचार, उसका व्यवहार सब बदल रहे थे। नीरव शहरी हो रहा था। उसको अच्छा लगे या न लगे पर शहरी सभ्यता की रीति नीति के अनुसार ही वह पेश आने लगा था। अमुक तरह से ही हँसने लगा, दुखी होने लगा। और नीरव को लगा कि अब उसे एक मुखौटा पहनना रास आ गया था। नीरव न रात को सोने से पहले नीद की गोलिया लेनी शुरू कर दी थी।

एक दिन इसी झील के किनारे गाथा की आखो म शाम की परछाइया उसने देखी। दूर चच की बद पडी घडी पर अधेरा उतर आया था। गाथा न कहा था कि हमारे बीच के सारे सबध भूल जाओ और अब मुझे भी भुला दो। यह सारा ही एक भ्रम था, एक रगीन खेल था। नीरव

का लगा कि उसके बताये हुए मेघ धनुष्य की किसी ने किर्चें किर्चें करके धधकते सूय के तेज प्रकाश म बिखेर दी थी। मेघ धनुषी रजकण उसके विचारो मे फैल फैल गये और आखो के समक्ष रगीन वतुल चक्कर काटने लगे।

शहर की नियॉन लाइटो के आसपास साझ का आखिरी अश रह गया था तब वह घर वापिस लौटा। टाई की नाट ढीली की और ड्रेसिंग टेबिल के सामने बैठकर वह ताकता रहा। क्या करना चाहिये उसे कुछ सूझता न था। कुछ देर गुमसुम बैठ रहने के बाद चेहरे पर एक मुसकराहट थिरक आयी। मूछ वालो पर अनायास ही हाथ फिर गया और चेहरा आइने के और नजदीक लाकर उसने फटे हुए होठों पर जीभ फेर ली। एक ओर पडा हुआ कोट कधे पर अदा से डालकर वह उठ खडा हुआ। एक पुराना गीत गुनगुनाता वह किचन की ओर गया। भूख थी पर खाने की इच्छा न थी। उसे लगा कि काफी दिनो से उसने भर पट खाना खाया न था। शहर म भर पट खाने का मन ही नही होता था। उसकी इच्छा हुई दानो हाथा से पारावी तरीके से खान की। सुबह नौकर बचा हुआ खाना देखकर प्रश्न करेगा और उसी तरह सफाई मे वह झूठ बोल देगा कि एक दोस्त के यहा रात को खाना खाकर आया था। अधेरे म वह आखें खुली रखकर लेट गया। सामने के मकान की नियान लाइट की लाल और नीली झिलमिलाहट वह दीवार पर देखता रहा। उसने उठकर नींद की गोलिया ली।

नीरव को लगा कि ऊचे-ऊचे मकाना के बीच, आकाश की ओर उठते जा रहे कांक्रिट के जगलो म, वह अकेला खडा है। सूने-सूने रास्ते है और ऊची-ऊची निष्प्राण इमारतें। शहर का रग सेव के रग जैसा है और वीरान रास्तो पर नीरव नामक परछाई दौडता है। इस शहर मे आकर उसने एक वस्तु खो डाली है—अपना व्यक्तित्व। कान्क्रिट के मकाना जैसे ही आत्मीयतारहित लोग है। नये-नये मुखौटे पहनकर लोग अपनी अपनी सीमित दुनियाओ मे चाबी वाले खिलौनो की तरह घूम रहे है। सुबह दस से पाच तक ऑफिस जाते, घर आकर सुखी होते लोग हैं! इस एकलक्षी दौड मे सारी ही प्रगति हासिल करने की अप्राण चेष्टा करते लोग! नीरव

भी उन लोगो के साथ ही इस ऊहापोह का एक अश बन गया है। पर कभी कभी लोगो के बहाव से अलग होकर विचार सकता है। सेब के रग का शहर उसको चारा ओर से जकड रहा है। बडी बडी इमारतें खाली हैं, फिर भी उसको लगता है कि असख्य आखें उसको ताक रही हैं और इस सघन कान्क्रिट के जगल म अकेला एकाकी नीरव। एक उत्तरहीन प्रश्न जैसा नीरव।

नीरव विचारो की गद मे डूबन लगा। उसे लगा कि उसके आसपास का प्रत्येक व्यक्ति जी लेने का मरणातक प्रयत्न कर रहा है। शहर के सीमित क्षेत्र म जीयी जाती फास्ट लाइफ सभी जीना चाहते थे। अपने व्यवहार से यदि दूसरे मे ईर्ष्या पैदा की जा सके तो वह सफलता गिनी जाती थी। नीरव को लगन लगा कि यहा के सभी लाग मृत्युदड प्राप्त हुए बदिया जसे है। उनके लिए मृत्यु सुनिश्चित है पर उससे पहले सभी ही बहुत अधिक जी लेना चाहते हैं। आधुनिक फ्लैटो मे कैद इन लोगा, फास्ट-लाइफ की बेडिया म जकडे हुए इन लोगा, और जेल मे बद कैदियो के बीच नीरव को अधिक अन्तर लगता न था।

गाथा उसके शात जीवन म कुछ तरगें उठाकर खिसक गयी थी। उसे लगा कि शहर उससे दूर सरक रहा है। अपने गाव वापिस लौट जान की एक प्रबल इच्छा हो आयी। नीरव ने सब कुछ भूल जान की कोशिश की। नयी नयी जगहा पर वह जाने लगा—नया-नया सुख खरीदने। रग बिरगे नाइट क्लब की अभ्रकी चिलक म डासर निकट आकर एक पशेवर मुस्कान बिखेर गयी। पतग की सी नजाकत से दूसरी टेबिला के बीच थिरकती डामर की गुलाबी देह की ओर नीरव ताकता रहा। एक विशाल पर्दे पर नायक, खलनायक, नायिका, सुख दुख के मुखौटे ओढकर अभिनय कर गए। किसी के सलोन हाथ थामकर नीरव डासिग फ्लोर पर सगीत के बहाव मे खो गया। उसका जीवन रगीन नियॉन लाइटो की तरह झिलमिला रहा था। इस झिलमिलाहट मे निहित एक विविधता बाहर आयी और नीरव को एकाकीपन लगने लगा। और तब गाथा उसे याद हो आयी।

यही झील थी, ऐसा ही एक साझ थी। पुराने मकबरे की गुबजी

ऊचाई से उडते हुए कबूतर की पाखो की फडफडाहट थी। नीरव ने झील के शात जल मे अपना प्रतिबिंब देखा।

—पाखो पर धूप लेकर उडने का मन होता है?

—अपनी आखो की गहराइयो मे झाकने का मन होता है?

फिर अशरीरी इच्छाए उसके मन मे उपजी।

अनुत्तरित प्रश्न मन की गहराइयो मे डूबते गये।

नीरव ने फ्लैट का दरवाजा खोला। सातवी मजिल के फ्लैट की खिडकी म से उसने बाहर फैले हुए शहर की ओर देखा। लक्षणविहीन असाध्य राग की तरह शहर फैलता जाता था। कुछ देर तक वह सुनमुन खडा देखता रहा।

आईने के सामने खडे रहकर उसने अपना चेहरा देखा और आज उसे चेहरा कुछ भिन्न ही लगा। शहरी सुख का मुखौटा उतर गया हो ऐसा महसूस हुआ और उसका मूल चेहरा दिखाई दिया—जो चेहरा लेकर वह शहर मे आया था। उसने खिडकी के पास जाकर नीचे फैले हुए शहर की ओर देखकर खिडकी बद कर दी। जैसे शहर के साथ का सबध तोड दिया हो। और फिर नीरव आईने म प्रतिबिंबित अपने चेहरे को निमग्न होकर देखता रहा। □

अपेक्षा

सुधीर दलाल

आप कभी ता पन्द्रह-सालह वप के थे न ? तो आप जानते होंगे कि शशाक को उस समय कैसा-कैसा लगा था।

यकायक ही पटाई से उसका मन उचट गया। पहली बरसात के बाद घास फूट निकले, या गरम रखे हुए पानी के उबलने पर पहले अलग-अलग और फिर बाद म सारे ढक्कन पर छाट छाट पारदर्शी बुदबुदे बनें फिर फूटें, इसी तरह शशाक के गाना पर मुहासे निकल जाये—पहल दूर दूर, फिर सारे ललाट और दोनो गालो का भर दते हुए, अनाज के लाल लाल दाना जैसे। चार छ महीने पहले का सुन्दर चेहरा अब कुरूप लगने लगा। एक दिन उसने आईने म ताक कर अपन सामने देखा। इधर उधर घूम कर दखा। चेहरे की तिल तिल जगह उसकी आखा ने खोज डाली। थोडे मुहासे फोडे, पर तब तो और भी अधिक गहरे लाल चकत्ते उभर आये। उसे अपन पर क्रोध हो आया। यह बदसूरत मुहासो वाला चेहरा किसी का भी अच्छा लगेगा ? किसी को भी ?

हाफपेंट से निकलते लबे काले बालो वाले पतले पैर दखकर उसे शम हो आई। मा का गले म बाधा हुआ तावीज उसने ताड डाला। अब कॉलेज म यह सब अच्छा नही लगता। बाल भी बिल्कुल पुरानी फैशन म कटे हुए थे। उसने निश्चय किया कि भले ही चेहरे पर मुहासे हो पर अन्य सब तरह से वह ऐसा टिप-टाप रहेगा कि किसी को भी पसन्द आ जाय, किसी का भी।

दूसरे ही दिन वह नये कपड़े खरीद लाया। चार नई ही फशन की 'आईवी' पन्टें सिलवाई। भड़कीले रग और वलबूटावाले चार बुश्शट भी ले आया। रुपये देकर आग गुच्छा रह ऐसे बाल कटा आया। अखबार म विज्ञापन पढकर मुहासोकी बढ़िया क्रीम ले आया। और फिर नई पैंट और नया बुश्शट पहनकर, सूखे बालो मे बढिया तल डालकर, कटीली जुल्फें मोडकर फिर आईने के सामने आ खडा रहा। अब वह किसी को पसद आयेगा, किसी को भी। केवल मुहासों के अलावा कोई कमी नही थी। वह भी इस क्रीम के प्रभाव से पन्द्रह दिना म तो साफ हो जायेंगे, और फिर वह सुन्दर लगेगा। वह खूबसूरत तो था ही मिवा

कालेज से आकर बहुत बार वह घूमने निकल पडता। रास्ते म कई नये नवेले अलबेल युवक युवतिया दिखाई दते। बहुत सा के साथ एक आध युवती ता होती ही। फिर वह बहन हा, चाचा मामा की लडकी हो और कईया के तो प्रियतमा भी। केवल वही अकेला घूमता। साथ कभी उसका दोस्त होता। पर कभी भी लडकी तो नही ही न ?

रात का खाना खाकर वह पलग बिछाकर उस पर लेटता। पलग पर आधा पडे पडे सिर नीचे झुकाकर तिनके से फश पर अदृश्य रेखायें खीचता। कभी चारी चारी नाम भी सुरखा, कालिंदी, रेखा अनुपमा, कुदनिका, निमला और फिर आस पास नजर फेर कर देख लेता कि उसकी अदश्य रेखायें कोई देख तो नही गया है न, फिर आश्वस्त होकर जसे हाथ से मिटा डालता। ये सब उसकी कक्षा की लडकिया थी। सभी सुन्दर थी—रूपवती। उसका मित्र नीतिन उन सबके साथ बातें करता तब स्वय यदि उसके पास होता तो खिसक कर दूर जा खडा हाता। उसके साथ कोई बात नही करती। सभी नीतिन के साथ बातें करने। क्या वह किसी को भी पसन्द नही है ? किसी को भी नही ?

अब उसके विचारो के घोडे सरपट हा जाते। कालेज से छूटते ही, उसके घर के नजदीक रहती रेखा चली जा रही होगी और पास से वह निकलता होगा तब एकाएक ही रेखा उसे आवाज देगी, "शशाक, इतने उतावले उतावले कैसे ? मुझे भी घर ही जाना है, हा।' पहली बार बात कर रही है, फिर भी कितनी निखालिसता से। जैसे वर्षों की जान-पहचान

हो।

अब उसे आप कहता या तुम ? 'तुम' कहा जाता ही नहीं। "अरे, तुम्हें तो मैंने देखा ही नहीं !" कहकर रास्ते के उस किनारे से इस किनारे आकर रेखा के साथ-साथ ही वह घर आयगा। ठीक पर तक नहीं। मां देख लेगी। काफी दूर से दोनों अलग चलने लगेंगे। उसके ये दिवास्वप्न इतने तो तादात्म्य थे कि उसके सारे शरीर में पसीना हो आता। और मां की स्मृति तो दरअसल तिलमिला जाना। शायद वह जान गई होगी ?

मां न जाने क्यों इसमें तो वह बमुश्किल खाना खाता। रात्री सही मायने में तो उसे अब मां भी अच्छी ही लगती नहीं। ध्यान भी नहीं। मां के साथ बात करना भी उसे अच्छा नहीं लगता। उसके साथ क्या बात करे ? कॉलेज की ? प्रोफेसरों की ? पढ़ाई की ? उसे जो बातें करनी थीं वह तो की जाय ऐसी नहीं। कालिंदी की मां की उसकी मां जानती थी इससे कालिंदी की मां की बात वह रुचिपूर्वक सुनता। कालिंदी की मां ने एक बार कहा था कि "तुम्हारा धर्मांक तो होशियार है, उसे पढ़ने की क्या जरूरत है ?" और जब उसकी मां ने उससे यह बात की तब वह कालिंदी पर खुश हो गया। कितनी हसीन थी वह।

पर रास्ते में जब रेखा को सचमुच वह कॉलेज से घर जाते देखता तो उसकी हिम्मत टूट जाती। फिर तो तेजी से चलकर आगे निकल जाता या फिर धीरे चलकर पीछे रह जाता। और तब भी उसके शरीर पर पसीना हो आता। रेखा उसके साथ कभी भी बोलती नहीं। और तो और कभी रेखा ने उससे आँखें चार भी नहीं की। रेखा की क्लास से उसके पास से गधा भी गुजर गया हो तो भी सरीखा ही था।

रेखा भी गजब की लड़की थी। इतनी सुंदर पर बेहद अलमस्त। एक बार उसने सारी हिम्मत इकट्ठी की और कॉलेज की छुट्टी होने पर दरवाजे के पास आ खड़ा रहा। बार बार घड़ी देखता, जैसे किसी से एपॉइन्टमेंट हो ऐसे। रेखा वहां से निकले तो आज तो उसके साथ ही उसे घर जाना था। "आखिर वह सूअर आया ही नहीं, चलो अब राह देखना बेकार है।" ऐसा कहकर वह भी उसके साथ चल निकला। रेखा के लिये ही खड़ा है ऐसा रेखा को शक भी न हो, गुंडा न समझ जाय, और फिर

रामान भी हो जाय।

रेखा निकली। पास से होकर गुजर भी गई, उसकी ओर बिना देखे। और वह घडी दखता रहा। फिर दसेक मिनट के बाद घर के लिय रवाना हुआ। तब तो रेखा घर पहुचने को होगी। "रखा को मैं सख्त धिक्कारता हू। बहुत ही अभिमानी लडकी दिखती है। मरी है तो कुछ नही, और फिर नाज नखरा ता दखो।" मन ही मन वह सनसनाता रहा।

उसके आगे की बच पर बैठी लडकी की मुलायम मखमली हथेलिया वह देखता रहता। एक ही बार, केवल एक ही बार वह उस हथेली को अपने हाथ म ले सके तो ? एक ही बार उन लम्बी अगुलियो म अगुलिया पिरोकर चिकने नाखूनो पर अपनी अगुलिया के पोर फिरा सके तो ? एक ही बार उस पतली सुराहीनुमा गदन पर से बाल हटा सके ता ? एक ही बार, केवल एक ही बार वह उससे सट कर बैठ सके तो ? उसके स्कट के साथ एकाध बार भूल से चिपक कर चल सके तो ? उसकी महक से अपना दिल दिमाग और नासिकायें सराबोर कर सके तो ?

उसे अन्य कुछ भी नही चाहिए था। केवल सिनेमा मे साथ कोई, उसके मनपसन्द बठा हुआ होना चाहिए था। उसे अपने मा बाप के साथ पिकनिक पर नही जाना, लडके लडकिया के मिले-जुले टोले म जाना था, जिस तरह उसके सभी मित्र जाते थे वैसे भाई, बहनें, भाइया के मित्र बहनो की सहेलिया।

पर एक दिन उसका नसीब खुल गया। दिल्ली से आज दसेक वष बाद उसकी मौसी आने का थी। और साथ म उसकी लडकी अपेक्षा। अपक्षा उसक जसी ही थी। अब कैसी होगी यह तो उसे पता न था। क्योकि उसे दखे दसेक वष हो चुके थे। अपेक्षा के साथ वह घूमने जायेगा उसके साथ सिनेमा दखन जायेगा, उसे अपना कॉलेज बतायेगा, कॉलेज के समय कॉलज बिल्डिंग म घुमायेगा। सब उसे देखकर बातें करेंगे "अरे! शशाक यह किसे ले आया है ? बिल्कुल मॉडन है!" और फिर बाद म सभी उसे पूछेंगे कि 'प्यारे शशाक, यह क्या परी थी ?' तब वह कह देगा कि, "मूख, जबान सम्भाल कर बोल, वह तो मेरी मौसी की लडकी है, अपेक्षा।' फिर भी यह कहने मे विजय का स्वर हल्का नही पडता। लो

बेटे, हम भी कुछ कम नही हैं। हम भी अकेले अकेले पिक्चर देखने नही जाते, किसी दोस्त के साथ। हमारे साथ तो अपेक्षा होती है।

अपेक्षा के प्रति विकार होने की कोई सम्भावना नही यह उसने मन ही मन निश्चय कर लिया। वह तो उसके मौसी की लडकी थी, बहन थी। वह तो मात्र सबको बनाकर चौंका देने का साधन ही थी, जिससे वह सबसे अलग थलग न पड जाय। खुद भी कभी बातो ही बातो म कह सके, "अरे, कल तो मैंने और अपेक्षा ने आइसक्रीम खाई है, क्या आइसक्रीम खाई है।" और सब समझें कि महत्व 'अपेक्षा' पर है, 'आइसक्रीम' पर नही।

अपेक्षा आई। उन्नीस वष की, गोरी, नाजुक, पतली, गजब की फैशनेबल, चालाक, बातूनी, नखराली, कमीज दुपट्टे मे खिली हुई, छोटी मलमली हथेली वाली, नेल पॉलिश लगे तीखे नाखूना वाली, तीखे स्वर मे बोलने वाली। अत्यन्त रूपवती नही, मल भलो को गश खिला दे ऐसी तो नही, पर बुरी भी नही थी। मन मे दो घडी सवेदन जगा जाय ऐसी तो थी ही। पास बैठी हो तो दो घडी बात करने को मन हो आए, ऐसी तो थी ही। और सच तो यह है कि उसके साथ बात करने मे हिम्मत इकट्ठी करनी पडे ऐसा नही था। वह तो उसके मौसी की लडकी ही थी, अपेक्षा।

और फिर तो वे खूब खूब घूमे। अपेक्षा को सिनेमा दिखाया। शहर दिखाया, कॉलेज दिखाया, काकरिया तालाब दिखाया, बगीचे मे घुमाया, आइसक्रीम खाई, दौडे, शर्तें लगाई, हँसे-खेले, 'गुड्डी' कहा, 'गुड्डा' सुना। 'बहुत मधुर है' ऐसा मन मे लगा। ऐसी ही कोई मेरी, कभी होगी ऐसा मन में निश्चय किया, आशा बाधी, स्वप्न सजोये। अपेक्षा उसके दिल मे समा गई। नये रूप म, नये लिबास मे, नई पहचान मे, नवीन मूर्ति रूप मे।

अपेक्षा आई, और वापिस दिल्ली चली गई। पर उसके वास्ते ता हमेशा के लिए एक स्वरूप छोडती गई, एक आदश छोडती गई, एक स्वप्न रचा गई, भावी पत्नी को मापन का एक मापदड छोडती गई।

पर पन्द्रह मे अट्ठारह वष की उम्र सभी का आती है और चली जाती है। शशाक पढता रहा। कॉलेज छोडी। विवाह हुआ। विवाह हुआ और पत्नी घर आई। अपेक्षा मे और उसमे बहुत अन्तर था। अपेक्षा पतली

थी, उसकी पत्नी सहज 'ठीक-ठाक' कही जा सके ऐसी थी। अपेक्षा का मुह लम्बा था और उसकी पत्नी का गोल। अपेक्षा तीक्ष्ण स्वर म बोलती, मजाक मे उसे भोलेपन मे गुड्डा कहकर खिझाती, उसकी पत्नी गहरी मीठी आवाज मे बोलती और ऐसी कुछ भी उल्टी सीधी चुभने वाली बातें नही करती थी। उसकी पत्नी देखते ही पसन्द आ जाय एसी थी, इसम तो दो राय नही पर अपेक्षा जसी तो नहीं ही थी। अपेक्षा तो अपेक्षा थी। कहा वह मस्ती, वह ख्वार।

पर उसकी पत्नी सुनीता ने उसके सारे घर का भार सम्भाल लिया। उसे वह बहुत चाहती थी। वह झगडता तो वह रो पडती माफी माग लेती। साथ घूमने जाती, बातें करती—सुननी भी पसन्द आये ऐसी। और फिर भी गहरे, गहरे, और गहरे उसे अपेक्षा की मूर्ति सताती। अपेक्षा जैसी सुनीता क्यो नही है ? क्या कसर थी ? बहुत विचार करने पर भी उसे समझ मे नही आता था। सुनीता हर तरह से आदश थी। इतना समझने जितना तो उसका माद्दा था ही। पर पहल जैसी उत्ताल तरगे उठती नही थी, हृदय की अतल गहराई मे वे फुहारें फूटती नही थीं। गदन के बाल हटाकर गदन चूम लेने की इच्छा नहीं होती थी। अगुलियो म अगुलिया पिरोते हुए कुछ सकोच हो आता प्रयत्न करना पडता दुलार करने का, प्यार करने का, स्नेह की उष्मा खोजने का।

और फिर कुदरत तो रग बदलती ही रहती है न ? और काल भी। एक दो, चार, पाच, सात, दस दस दस वर्षों की परतें जम गई हैं। अपेक्षा ढक गई है, वे उत्कट इच्छायें और स्वप्न ढक गये हैं। परन्तु जो चाहता थी वह मिली नही। यह भावना गहरे-गहरे ही कभी कसमसा उठती है। सुनीता अच्छी है उसे सुख देती है, बालकों को सुशील बनाती है, सब कुछ है, पर इतना ही है कि वह अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा का स्वरूप भी नही। बहुत बार तो उसे भी लगता है कि मुझे ऐसा तो क्या चाहिये है जो सुनीता म नही है ? कुछ भी नही। सब कुछ उसमे है। तो फिर ? वे झरने की सी फुहारें कभी भी नही फूटती ? ऊचे उडे हुए गुब्बारे कभी भी अनेक झिलमिलाते तारो के हास्य मे एकरस नही हो पाते ?

ऐसे मे ही एक दिन, अब बर्मा मे अपने पति के साथ रहती अपेक्षा

का पत्र आया। वह अपने शहर लौटी थी और कल यहां आयेगी। इतने वर्ष बाद अपेक्षा! यकायक उसके हृदय में वसंत खिल उठा। आनंद की लहरें उठीं। फिर उसका स्वप्न साकार होगा इसका आनंद उसमें नहीं समा पा रहा था। वैसी ही उसकी सुनीता होती तो कितने रौब दाब के साथ अपेक्षा से परिचय करा सकता। 'अपेक्षा, यह है सुनीता!' और फिर स्वयं गर्व से फूल उठता देखा न? कैसी पत्नी ले आया हूं? और अपेक्षा भी मुंह में अंगुली दबा लेती।

अपेक्षा आई—दस वर्ष बाद। साथ उसके चार बच्चे थे अजीब तूफानी जहाज। मेनर का नामनिशान नहीं। मोटर कभी देखी ही न हो इस तरह चढ़ बैठे और स्टियरिंग मोड डाला। और अपेक्षा! बहुत मोटी-ताजी हो गई थी। कुप्पे जैसे गालों ने आंखों को ढक-सा दिया था। पहले वाली अपेक्षा की तेजस्वी चमकती आंखें फीकी पड़ गई थीं। बिल्कुल चेतनाशून्य और मिजाज? बापरे! शशांक की हिम्मत ही पस्त हो जाय। घर पहुंचने तक तो हरेक लड़का पिट गया।

मोटर घर में आते ही अपेक्षा ने कहा, "शशांक, सुनीता तो बहुत सुंदर है, ऐसा मां लिखती थी। यहां है या मायके?" और सुनीता बाहर आई तब अपेक्षा का वह पुराना स्वभाव एकबारगी कुछ देर के लिए चमक उठा। शशांक को धप्प लगाते हुए बोली "अरे वाह! भाभी तो क्या है शशांक! प्रशंसा करते हुए शरमाता था?"

शशांक अपेक्षा और सुनीता की तुलना करता रहा। यही है उसके सपनों की अपेक्षा? ऐसी ही पत्नी वह चाहता था? स्थूलकाय मिजाजी, चार बन्दरों की मां?

उस रात शशांक ने जी भर सुनीता को प्यार किया। □

हृदय की पुकार

पीतांबर पटेल

तब तो सावित्री के सिर पर आसमान टूट पडा हो वैसा आघात लगा। वह अभागिन है। उसे किसी के साथ लेन-देन नही। उसका कोई नही। भगवान भी उसका नही। सारी जिदगी भगवान को सिर पर रख कर भलाई का काम किया तो भी उसके बुढ़ापे मे उसने ऐसा दिन दिखलाया।

सावित्री कहे भी तो किसे? खुद उसका लडका ही अपनी पत्नी को लेकर चलता बना तो वह कहे भी किसे? कितनी कितनी उमग से उसने सदीप को गोद लिया था? वह उस दिन की ही राह देखती थी कि लडका बडा हो। पढे लिखे और कही अच्छी नौकरी पर लग जाये। वह अपन लडके के बच्चा को खिलाती अपना शेष जीवन व्यतीत करेगी। घर म बच्चे किलकारिया मारते रहगे। वह बच्चा को गोद मे बैठाकर खिलाती होगी। उसकी पुत्रवधू काम करती हागी। बीमार होने पर 'मा मा' करती उसकी सेवा चाकरी करगी। उसके जीवन का निर्माण किया है इसका ऋण चुकाने के लिए सदीप हर बात मान लेगा। सुख शांति से उसका जीवन धन्य हो जायेगा। पर उसका सपना मिट्टी मे मिल गया। सदीप अपनी पत्नी रेखा को लेकर चला गया। वह फिर से अकेली एकाकी हो गयी।

सावित्री के अन्तमन म, कपास का सूखा डठल भड भड की आवाज करता हुआ जलता है, ऐसा भडाका हुआ था। वह स्वय को और भगवान

को कोस रही थी। वह ऐसी भी कैसी अभागिन कि कभी जीवन की छाह भी न देखी। वह बाल विधवा हुई। एक ही बीमारी मे उसका पति चल बसा। दुनिया क्या है विवाह क्या है वह समझे उससे पहले ही उसके जीवन का घोसला उजड गया। वह रातोरात अभागिन और आश्रयहीन हो गयी। अभी तक तो अब ही उसकी शादी की उम्र हो रही थी। पर ब्राह्मण बाल विधवा को कैसे कसे शाप सुनने पडते है, सिर पर कैसी गुजरी है वह याद करते ही उसे कपकपी हो आई।

उन भयानक दु ख भरे दिनो को भूलने के लिए ही तो उसने हिम्मत करके अनाथाश्रम म जाकर एक लडका पसन्द किया था। उसने भूतकाल की यादो पर काला पर्दा डाल दिया था। वह भूतकाल के दिन भूलना चाहती थी। उसे केवल एक बात का गौरव था कि वह सिर ऊचा रखकर सम्मान पूर्वक जियी थी। विधवा होने के बाद वह हाई स्कूल पास हुई। अध्यापिका बनी। आवश्यक परीक्षाए पास कर वह कन्या शाला म प्रधानाध्यापिका बनी। उसका जीवन फिर से आनदित हो उसके लिए ही तो जाति का समाज का खौफ मोल लेकर भी अनाथ सदीप की वह मा बनी थी। वही उसका पिता भी बनी थी। सदीप को माता-पिता के लाड की कमी न अखरे इसीलिये बहुत ही हेत-प्यार से उसे पाल-पोषकर बडा किया था। प्यार मे पढाया था। सदीप का बक मे नौकरी मिली। उसने खुद ने मन-पसन्द रेखा के साथ शादी की थी। उ ही दिनो म सावित्री को सेवा नियमो के अनुसार सेवानिवृत्त होना पडा।

वह देखती थी कि रेखा ने उसे स्वीकार किया न था। रेखा का ससार तो एक मात्र सदीप मे ही सिमट कर रह गया था। रेखा कभी उसे मा कहकर पुकारती न थी। कभी उसके स्वास्थ्य का हाल चाल पूछती न थी। उलटा 'जरा इतना कर देना न यह कर देना न ' कहकर काम करने के लिए बतलाती। सावित्री सोचती कि घूमने फिरने की उम्र है। चाहे घूम। जवान ह तब तक घूम फिर लेने दो। बाल-बच्चे होने पर फिर य कहा घूमने जायेंगे। फिर तो यही घर चलायेगा न।

पर बेटा ही सावित्री का बदला हुआ लगा। वह रेखा की आखो के इशारो पर नाचने लगा था। उसके अस्तित्व की खोज-खबर भी लेता न

था। कुछ कहन पर बात को उडा देता था। वह पत्नी के पीछे पागल है या मन म सोचकर सावित्री अपने मन को मना लेती। पर एक दिन सदीप न आकर खुश खबरी सुना रहा हो इस तरह कहा 'मा, मेरी पदोन्नति हो गयी है।'

'बटा, यह ता बहुत अच्छी खबर सुनायी।'

हमारी बक की एक नयी शाखा खुल रही है। मुझे वहा एजेंट की हैसियत से भेजा जा रहा है।'

'तुझे आगे बढने का मौका मिलता हो तो भले ही चाहे जहां भेजे।'

परन्तु सदीप के दिल मे जो थी वह बात निकल गयी।

'पर रेखा का आग्रह है कि हम दोनो जनें ही जायें।'

'हम दोनो जनें ?' मूल से बिजली के तार से हाथ छू जाय वैसा झटका सावित्री ने महसूस किया, 'और मैं ?'

सावित्री के हृदय मे से जैसे नि श्वास निकल गया। उसका चेहरा बदल गया। आखें जसे आघात से फट गयी। सदीप उसके बाद कुछ बोला नही। घर मे सन्नाटा सा छा गया। सावित्री आघात मे दुहरी होकर चारपाई पर लेट गयी।

दो दिन गुजरने के बाद सदीप ने कहा 'मा, मुझे आज जाना है। मैं और रेखा जा रहे है। घर किराये का लेकर सारी व्यवस्था करने के बाद तुझे लेने आऊगा। तबीयत का ख्याल रखना। और पत्र लिखती रहना।'

मा का आशीर्वाद लेने के लिए भी वह न रुका। रेखा ने 'अच्छा मा ' तक भी कहा नही। उलटी घर के आगे खडे हुए रिक्शे म बैठी-बैठी सदीप को आवाजें द रही थी। बटा चला गया। उसकी बहू उसके बेटे को छीन ले गयी। उसके सारे अरमान भी साथ लेती गयी। वह पुन अकेली एकाकी हो गयी। चारो ओर कुहरा छाया हुआ हा वैसे उस आखा से कुछ दिखायी देता न था। उसे चक्कर आने लगे। चलेगी तो गिर पडेगी। इस तरह से सिर घूमने लगा। उसका समग्र अस्तित्व छिन्न भिन्न हो गया। सावित्री सावित्री न रही। इस आघात ने तो उसे जड बना दिया।

उसे ऐसा महसूस होने लगा कि इस धरती पर उसका कोई नहीं है। उसके भाग्य म सुख नही। वह फूटे हुए तक्दीर वाली है। उसके हाथो मे

समुद्दिन्न आया हुआ सुख का प्याला भी उलट गया। वह किसे दोष दे!

आकाश में एक-एक बादल घिर जाय और सारा वातावरण ही बदल जाय ऐसा सावित्री के जीवन में हो गया। तब तो उसे ऐसा ही लगा कि सारे जगत का दुःख उस पर ही उमड आया है। वह दुःख के बोझ तले दब गयी और दम घुटने लगा।

बड़े जैसा बेटा चला गया तो वह कहे भी किसे? उसे कितने लाड-प्यार में बड़ा किया था। लोगों के कैसे विरोध के बीच उसे गोद लिया था। वह यह दिन देखने के लिए? वह सदीप के पास में कुछ भी मांगती नहीं। उसे सुख साहबी की आवश्यकता नहीं। केवल बेटे का मुस्कराता चेहरा देखती रहे तो भी उसका अंतमन प्रसन्न रहता। पर वह तो उसे छोड़कर अन्यत्र चला गया। ऐसी निराशा और विषाद की हवाएं चलती ही रहीं। उसे ऐसा भी लगा कि भगवान ही उस पर नाराज हैं। नहीं तो क्या ऐसा हो सकता है?

कुछ दिनों तक तो सावित्री इस प्रभाव से मुक्त ही नहीं हुई। उसे जीवन में दुःख के प्रसंग ही याद आते रहे। उस जैसी एक-दो जवान विधवाओं को पढ़ाकर, परीक्षाएं पास करवाकर, उसने अध्यापिकाओं की नौकरी दिलवायी थी। वे अध्यापिकाएं उसके सामने अब देखती भी नहीं। वे आभार प्रकट करें ऐसा भी वह चाहती न थी। ऐसा भी वह सोचती न थी कि वे उसके एहसान के कारण दबैल रहें। पर मुंह फेरकर चे बैठ जायें यह क्या उचित है? उसे भलाई के फल से लेन-देन नहीं। सारी जिन्दगी भर उसने कुछ न कुछ दया का और करुणा का काम किया है। कभी फल भी मांगा नहीं। पर उसे कभी आनंद हो, उसकी थकान उतर जाय ऐसी खोज खबर भी किसी के द्वारा ली नहीं गयी। तुमने यह अच्छा किया ऐसा कहने वाले भी कोई नहीं। उसे ऐसा ही लगने लगा कि सब स्वार्थ के साथी हैं। यह दुनिया ही बिगड़ गयी है। किसी को भलाई से सरोकार नहीं। कोई गुण देखता नहीं। किसी का काम करवाना हो तब तक तो चक्कर निकालते रहते हैं। काम हो गया तब राम तेरी माया। संसार स्वार्थी बन

का सवाल आया तब उसने कहा था

'मा, तू कहे वैसा करू।'

'वैसे वहू बसे?'

'तेरा मन दुखे ऐसा कुछ करना नही। मुझे चोरी छिपे भी श करनी नहीं। तेरे आशीर्वाद के साथ ही शादी करनी है।'

और उसने सारी बात का पता लगा लिया था। सदीप का मन र मे साय जुड गया था। उनके मन मिल गय थे। वह दो जीवो को दु करने के लिए क्या विलग करे? उसने प्रेम से सहमति द दी थी। र सारी बात रेखा जानती है। तो भी सदीप को उसी का, अकेली का बन की कैसी चाल खेल रही है। उसको लेकर चली गयी।

अब तो उसे ऐसा भी लगने लगा है कि वह बडे ऑफिस का छाडक नयी शाखा मे एजेंट के तौर पर गया इसमे भी उससे दूर जाने की ह चाल होगी। रेखा ने ही यह सारा जाल रचा होगा। वह मेरे साथ र यह उससे सहन ही नही होता। यहा था तब भी उसे मुझ से कितना दू रखती थी। सारे समय उसे बाहर घूमने या सिनेमा म या खरीद फरोख के लिए ले जाती थी। मा-बेटा मिले-जुले या हँसे-बोले यह उसे अच्छ लगता ही न था। वही उसके पीछे पडी थी। उसने ही मा-बेटे को अलग थलग करने का षड्यत्र रचा था।

सावित्री के अतर्मन मे निराशा घनघोर हो गयी थी। उसे जीवन म केवल निराशा दुख और आघात घहराते दिखाई देते थे। ऐसी गरजना के बीच वह अवश हो गई थी और इस भयकर बाढ म खिचती जाती थी। बाहर बादल बरसें और धरती को पानी पानी स ढक दें वैसे निराशा चारों ओर छा गयी थी। अब उसके मन मे बिजली की तरह कौधन हुई। उसने सदीप को किसलिए गोद लिया? वह कहा जानती थी कि उसकी रगो मे किसका खून बहता होगा? खुद के जने भी इस कलियुग म सुखी करते नही तो दूसरा के जने उसे कहा से सुखी करें? वह खुद जान-बूझ-कर इस माया जाल के चक्कर म फसी है। बुढापे म सुख शाति मिले इस विचार से उसने सदीप को पाल पोषकर बडा किया। उसके साथ म हेत प्यार का सबध जोडा। अपने हृदय का अमृत पिलाकर उसे बडा किया।

सदीप ही उसका जीवन बन गया। वह इसी दिन के लिए ?

उसे एक प्रसग याद हो आया। गोवधन और वह एक ही स्कूल मे काम करते थे। वह सज्जन शिक्षक था। विद्याव्यसनी था। उसे पढने लिखने का बहुत शौक था। वह बालकाव्य और बालगीत भी लिखता। उसे उसकी पढाई की रुझान अच्छी लगी। किसी बात को लेकर परिचय बढाने का मन भी हुआ था। एक दिन गोवधन ने साहस कर उससे एक प्रश्न पूछ डाला

'आप इजाजत दें तो एक प्रश्न पूछना है।'

'पूछिये न।'

'आप ब्राह्मण विधवा है यह मैं जानता हू। मैं भी ब्राह्मण हू इसस जानता हू कि विधवा विवाह की बात अभी तो हो सके वैसी नहीं। कोई युवक शायद आगे भी न आये। पर आप सहमति दें तो मैं तयार हू।'

सावित्री नयी, उसके समग्र अस्तित्व को झकझोर डाले ऐसी बात सुन रही थी। गोवधन कहता जा रहा था

'मैं विधुर हू। मेरे एक लडका और लडकी है। मैं कुवारी लडकी के साथ विवाह करना उचित नही समझता। काई विधवा मिले तो बच्चा के लिए ही हिम्मत करने के लिए तैयार हू। हम दोना एक ही व्यवसाय मे हैं। परिचित भी है और फिर उजडे हुए घरा वाले हैं। यदि आप विचार कर सकें तो अच्छा है।'

और सावित्री ने बहुत ही हिम्मत की हो उस तरह कहा था, 'मैं विचार करके चार पाच दिन बाद जवाब दूगी।'

तब वह उसकी विधवा बुआ के यहा रहती थी। पुनर्विवाह का विचार भी तब वह घर म साथ ला सके वैसी न थी। वह बुआ को पूछ सके वैसी भी न थी। एसा विचार करना ही महान पाप गिना जाता था। वह मुक्त मन से विचार ही कर सकती न थी तो हिम्मत तो कर ही कैसे सकती थी ?

उसने एक सप्ताह बाद सक्षिप्त जवाब दिया, 'मुझ मे यह हो सके ऐसा नहीं।'

उसके बाद गोवधन न अपना तबादला करवा लिया। उसम फिर वह

कभी मिला नही । वह मुश्किलो के बीच दोना बच्चो का बडा कर रहा था । उसका क्या हुआ इसका उसे पता नही । पर एक बार उन्ती उडती बात उसके कानो मे आई थी कि सेवा निवृत्त होने म दस वप बाकी थे उस समय उसे गले का कसर हो गया और उससे उसकी मत्यु हो गई ।

इस समय उस गोवधन की याद हो आई । उस समय उसने हिम्मत कर ली होती तो । वह आगे सोच नही सकी । विधवा फिर गोद ले भी कस ? वह भी फिर अनाथ बालक । वह उसके परिवार वालो और सग-सबधियो से पूछने जाये तो वे उसे जीवित ही दफना डालें । पर उसने हिम्मत की । उसका मातत्व बालक को चाह रहा था । उसका कहा जाये, उसका हाकर रहे ऐसा बालक । इसीलिए तो अनाथाश्रम म जाकर वह अपनी पसन्द का बालक ले आयी थी । उसने ही उसका नाम सदीप रखा था । यह सदीप ही उसका सवस्व था ।

सदीप को गोद लिया उसके बाद उसने कभी सग-सबधियो के यहा पर नही रखा । अध्यापिका की नौकरी और टयूशन की बचत और लोन लेकर उसने स्वय का मकान बनवाया था । पूजी म उसका सदीप था । उसके प्रेम के कारण तो वह सग-सबधियो की टीका टिप्पणी सुनती भी न थी । सदीप के यज्ञोपवीत के समय भी उसने मित्रो और जान-पहचान वालो को ही निमत्रित किया था । सबधियो को तो जान-बूझकर निमत्रित नही किया । लोगो की कैसी और कितनी टीका टिप्पणिया सहन की था यह ता वही जानती थी । वह सदीप भी उसे छोड गया ।

उसे ऐसा ही लगा कि दु ख के कुए म किसी ने धक्का मारकर डाल दिया है । वह विधाता के सामने झूझी और सुखी होने का माग निकाला वह भी उससे सहा नही गया । वधव्य तो उसने निभाया । पर बेटे के साथ का यह अलगाव किस तरह सह सकगी ?

उसका मन खेल खेलता हो वैसे क्षण म एक विचार करता तो क्षण म दूसरे विचारो म खो जाता था । अब उसे ऐसा महसूस होने लगा था कि उसने गोवधन की बात मान ली होती तो इस तरह अकेली-एकाकी नही रहना पडता न ? पर उसने इस विचार को आगे नही बढने दिया । प्रयत्नपूवक मन को सुन्न कर लिया । उसे ऐसा भी लगा कि अकेली एकाकी तो शायद

वह पागल हो जायेगी। उसे सदीप कितना याद आता है। बेटे का मुह देखने के लिये वह तो इतनी तडफती है और सदीप को कुछ भी महसूस नहीं होता ? हे भगवान ! तू मानव के मन म ऐसी मोह माया किसलिये डालता हे ? कुछ ही दिना मे तो उसकी उम्र जैसे बहुत ही बढ गयी। अशक्ति भी बढ गयी। अब तो चलती तो भी चक्कर आते थे। धरती परो के नीचे से खिसक जाती लगती थी। अब जुगनू की तरह एक नया ही विचार कौध आता था

'अब मुझे किसलिये जीना है ?'

उसका जीवन की लीला समेट लेने का मन होता था। जीकर भी क्या करना है। आत्महत्या कर लू ! जहर पी लू ! मन मे तरह तरह के तर्क-वितर्क आने लगे। फिर भीतर बैठी हुई मा उठ खडी होकर चिरौरी करने लगी

'भगवान ! अब मौत का भी भय नही। पर मरने से पहले मेरे सदीप का चेहरा जी भरकर देख लेने दे '

उसका मन आसक्ति के खोल म छिप गया। वह पुन शिथिल हो गयी। चाहे इसी तरह मृत्यु हो जाये। आत्महत्या करे तो उसका सदीप बदनाम हो जाय। इसकी अपेक्षा तो वह इसी तरह यहा खाये-पाये बिना ही पडी रहे और मृत्यु की माला फेरती रह। मृत्यु ही इस सब मे से उसे मुक्त कर सकेगी। उसका मन शिथिल पड चुका है। वह सदीप की मोह माया छोड नही सकेगी और रेखा उसे आने नही देगी। वह बेटे का मुह देख नही सकेगी।

कुछ दिन पहले सदीप का पत्र आया था। नयी शाखा का उद्घाटन हो गया था। उसे मकान भी मिल गया है। छुट्टी का प्रबध कर वह लेने के लिय आयगा। पर वह लेने के लिये नही आया। और फिर पत्र भी नही आया। यह भी कैसा बेटा ! पत्र भी नही लिखता। रेखा मना करती होगी ? तो आफिस से लिखते हुए क्या होता है ? उसे पत्र लिखने का समय भी नहीं मिलता ?

उसका मन छिपकली की कटी हुई पूछ की तरह तडफडा रहा था। उसने जीवन मे दो बडी भूलें की हैं। पहली भूल उस गोवर्धन की बात

नही मानी वह। दूसरी भूल सदीप को गोद लेकर मन को मोह-माया के चक्कर मे डाला वह। पर अब इससे छुटकारा कैसे मिले ? अब तो उसे भी ऐसा लगता था कि वह अधिक नही जी सकती। निहायत दुबल हो गयी थी। मन से और शरीर से टूट गयी थी। आकाश से अधेरा उतर रहा था। उसके अतस मे भी अब तो घनी कालिमा फैल गयी थी। मन भी बिल्कुल शून्य हो गया था। तभी उसे जैसे आवाज सुनाई दी

'मा मा

उसे कोई झकझोरता हो ऐसा आभास हुआ।

'मा मा मैं तुम्हारा सदीप मा, तुम्हारा बटा सदीप '

सदीप ने बत्ती जलायी। सावित्री ने प्रयत्नपूवक आखें खोली। जैसे भ्रमणा हो वैसे फटी आखो से निरखती रही।

'सदी मेरा बटा है वह सदीप के मुह पर, सिर पर हाथ फेरने लगी।

हा मा मैं तुझे लेने के लिये आया हू। तुम्हार बिना हमे कुछ भी अच्छा लगता नही। मा, मैं सूना सूना हो गया हू। मुझे रेखा ने ही तुझे लेने के लिये भेजा है।'

सदीप ने इनमे से कितने शब्द सुनाई दिये यह तो वही जाने। पर सावित्री तो मत्यु के बदले भगवान मिल गये हो उस तरह बेटे से लिपट-कर गिडगिडाने लगी

सदीप बेटा मुझे छोडकर कहा गया था ? तू मुझे भूल गया। मुझे अकेला छोडकर चला गया। बेटा, मा को तू भूल गया ?

कुछ देर सुस्ताकर वह बोली 'तेरे बगैर मैं कैसे जी सकती हू ? बेटा! इतना भी भूल गया कि तेरे बगैर मेरी क्या दशा हुई होगी ? पगले ! मा को छोडकर जाया जाता है कभी

सावित्री बेटे को चूमती रही। सिर के बालो म अगुलिया फेरती रही। उसके शरीर को सहलाती रही।

तब मा और बेटा दोनो हेत-प्यार के आसू बहा रहे थे। सदीप ने ने स्वस्थ होकर स्वीकार किया

मा, तेरी बात सही है। मुझे ऑफिस मे भी तेरी पुकार सुनाइ देती

थी। जसे कोई आकर मेरे कान म कह रहा था। मा बीमार है, दौडकर बुला ला। तेरे हृदय का आतनाद सुनकर मा, मैं दौड आया हू।

तब उस कमरे मे 'मा मा ' की आवाज सुनाई द रही थी। सावित्री को तो यह वास्तविकता है या भ्रम है इसका भी निश्चय होना न था। इसी से ता वह बीच बीच म सदीप को पूछती थी, 'बेटा, यह मेरी भ्रमणा तो नही है न ? बेटा, तू ही मुझे लेने के लिय आया है न ' और यह तो मेरा सदीप है, उसका ख्याल आते ही वह फिर हर्षोन्मत्त हो जाती, 'बेटा भगवान ने तो मेरी मत्यु सुधार दी।'

सदीप का हृदय भर आया था। थोडे ही दिना म मा कैसी हो गई है! उसने इतना ही कहा 'मा, अब तुझे अकेला नही रहना है। हम साथ ही रहगे।'

उस समय मा और बेटे के मगल-मिलन का दश्य देखन वाला उस घर मे कोई नहीं था। ☐

ईडिपस, अण्डा, मछली और मा का प्यार

गागजी खुमाण

पूरे पहाडा के उस पार की वनराजी के पिछवाडे अतिशय भयानक जगल था। घनघोर काले आकाश के एक क्षितिज तक वह फैला हुआ था। उसके बाद धीरे धीरे छोटे छोटे गावो की शुरुआत होती है। निरी आखो से देखते हुए कोई उसके विस्तार का सही सही नाप नहीं निकाल सकता क्योकि बीच म हरे भरे मदान लालमुख आखो वाले राक्षसी आकार के चित्रविचित्र पहाड और फिर पुन छोटे छोटे घरो के अलग-अलग समूह हैं। उसका सही नाप कसे निकाला जा सकता है ! कौन जाने कसे, इन सभी जड चीजो की श्रृखला इस तरह रची हुई है कि सब कुछ अजीब सा लगता है। फिर भी आगे बढना जरूरी है, अब तो क्षितिजो की तहो मे से भी दूसरे क्षितिज जन्म लेने लगे है, फिर भी समुद्र आता है, नदिया, तालाब और छिछले गड्ढे आते है और इनके बाद ही एक टेढी मेढी पगडण्डी अनेक छोटे शहरो से गुजरती हुई एक विराट शहर की धरती से आ मिलती है सक्षेप म, यह एक महानगर था।

महानगर ! इस नगर के आदमियो के चेहरे खास देखने जसे नहीं। सुबह, सूरज किस दिशा से उगता है और कहा अस्त होता है इसके बारे मे य अनजान हैं। इन्हें कोई सरोकार नही कि मिल के भोपुओ पर कौए या चीलें कभी कभी आ बैठती है, रात के आकाश मे भी पक्षी उडते हैं और हद से अधिक शोर-गुल वाले वातावरण म भी एक प्रकार का सन्नाटा हाथ-पैर समेटकर सोया हुआ होता है। सचमुच उनके चेहरे देखने जसे

नही होते। क्योकि इनमे नया कुछ होता भी नही। सलोने, खुरदरे, विकृत और समझ मे न आ सके ऐसे विषाद से आच्छादित वही के वही चेहरे इस शहर म रोज-ब राज तैरा करते हैं।

इसी शहर मे एक आदमी रहता था।

उसका नाम शिरीष था।

चाहे वैसाख की लू चल, चाहे बरसात झिरमिर झिरमिर बरसे और चाहे कातिल ठडक की शुरुआत हो पर तब भी उसके चेहरे पर एक ही प्रकार का भाव हमेशा छाया रहता था।

उसकी विचार करन की आदत कुछ ऐसी थी—

कि काले पहाडा के पत्थर हमेशा रोया करते हैं।

कि घने जगल मे कोई भी रहता नही।

कि आदमी का वश आदमी का वश नही।

कि रात होती है तब आकाश मे दिन छाया हुआ होता है।

कि रोना समझ मे न आए ऐसी एक विचित्रता है।

कि आदमी के मर जाने के बाद शेष कुछ नही रहता।

कि आदमी का पुनज म होता ही नही, यदि ऐसा हो तो दुनिया की आबादी इतनी बढ जाए कि धरती पर पैर रखने की जगह ही न रहे और पक्षियो के बैठने के लिए एक भी पेड न रहे। नतीजतन हमेशा के लिए पक्षी आकाश मे ही उडते रहें और हमेशा पीले रग का अधेरा जगत पर छाया हुआ ही रहे।

कि हमेशा हमेशा के लिए वातावरण मे चारो ओर किन्ही अज्ञात वस्तुओ की चीखें गूजती ही रहती हैं।

कि मत्यु केवल नाम के सिवा अय कुछ भी नही।

शिरीष एसे ऐसे विचार करन की आदत वाला आदमी था। उसके विचारो का आयुष्य इतना कम था कि किस क्षण दूसरे नये विचार उसके मस्तिष्क म पलाथी मार कर आ बैठें इसका वह विश्वास दिला सकता न था।

एक रात वह जाग गया और आखें मसलता उठ खडा हुआ। एक गिलास ठडा पानी पिया। और यकायक उसे याद हो आया पूरे दिन

वह भूखा रहा था। तुरंत उसने रेफ्रिजरेटर में से तीन अंडे निकाले और आमलेट बनाकर खाने लगा। रोज की तरह डाईनिंग टेबल पर बैठा न था इसलिए छुरी-कांटे की जरूरत उसने नहीं महसूसी। कोरे आमलेट खाकर वह बिस्तर पर लेट गया। उसने अपनी आखें 'शिलिंग फैन' पर गड़ाईं कुछ क्षणों बाद उसे प्रज्ञा याद आने लगी और वह तपाक से उठ खड़ा हुआ। कपड़े पहनकर वह बाहर आया और पास होटल के परमिट बार में जा बैठा।

शराब पीने के बारे में उसके विचार अन्य लोगों से नितांत उलटे थे। लोग कुछ भूलने के लिए पीते हैं, वह कुछ याद करने के लिए पीता था। उसे प्रज्ञा की याद अचानक आई थी और उसे आशंका थी कि उसकी याद वह क्षण भर में भूल जाएगा, इसीलिए ही तो वह 'बार' में आकर पीने बैठा था। प्रज्ञा का चेहरा धीरे-धीरे उसकी आखों के समक्ष स्पष्ट होने लगा और उसे लगा, प्रज्ञा को अब वह अधिक स्पष्ट और सुंदर रूप में देख सकता था। बीच बीच में उसे एंटोनी, सुरेखा, पोपकोंन और जंतुआलय के सूअर दिखने लगे थे। प्रज्ञा के बीच ऐसा सब कुछ दिखे यह उसे अच्छा लगता न था, परंतु स्वयं की तीव्र चिढ़ के बावजूद भी एंटोनी, पोपकोंन, सुरेखा और सूअर के धुंधले चेहरे उसे दिखते रहे थे।

प्रज्ञा के अलावा सारी चीजों को टालने के लिए वह अपना नाम याद करने लगा। उसे पूरी तरह से ऐसा लगने लगा कि उसका नाम शिरीष न था। दूसरा क्या नाम था वह स्वयं जानता न था। परंतु उसे लगा, अवश्य उसका नाम शिरीष तो नहीं था। यकायक वह आनंदित हो उठा, क्योंकि आहिस्ता आहिस्ता प्रज्ञा के अलावा दिखने वाली चीजें धुंधली होती हुई अलोप हो गई थीं और अब केवल प्रज्ञा ही उसे दिख रही थी।

आठ दिन हुए, प्रज्ञा का असली चेहरा उसने देखा न था। कलकत्ता से वह वापिस लौटी न थी। प्रज्ञा के साथ शिरीष के संबंध आजकल कुछ ऐसे थे।

—

प्रना उससे कहती, "बस, अब छोड मुझे !"

"केवल एक बार और !" शिरीष कहता।

"उहु !"

"केवल एक बार !"

और यो वह कहकर शिरीष बहुत बार उसे बांहो मे लेकर उसके प्रवाल जैसे होठो पर चुम्बनो की झडी लगा देता। उसको लगता, प्रज्ञा उसके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अश बन गई थी। प्रज्ञा और उसके बीच के प्रणय के दिन इस तरह धीरे धीरे बीत गए और एक ऐसा क्षण आया कि दोनो एक-दूसरे से अलग पड गए। परन्तु शिरीष कभी-कभी सोचता था कि वह इसी क्षण का इतजार कर रहा था।

वह क्षण यह था कि दोनो ने विवाह कर लिया था।

शिरीष की मान्यता के अनुसार दोनों अलग पड गए थे। एक रात शिरीष ने प्रज्ञा से कहा

"प्रना, हमारे लिए विवाह करना जरूरी था !"

"आह, नो, नॉट एट ऑल !"

"तो फिर तू सहमत कैसे हुई ?"

"तूने कहा इसलिए !"

"पर मैंने कब कहा था ?"

"अच्छा, तो तू अब क्या कहना चाहता है !"

"कुछ नही, केवल मैं याद करना चाहता हू कि मैंने ऐसा तुझे कब कहा था !"

प्रना के साथ जब वह इस तरह बात कर रहा था तब उसके मस्तिष्क म एक समझ मे न आए ऐसी अकुलाहट बढने लगी थी। उसे लगता था, उसके कमरे म छाई हुई शाति मे धीमे कोलाहल की कोई शुरूआत हो चुकी थी और धीरे धीरे फैल रही थी।

"माय गुडनेस प्रना ! मेरी विचारशक्ति को क्या हो गया ? विवाह के लिए मैंने कहा था या तूने ?" शिरीष बोला।

"अच्छा ! लो व इट, मैंने कहा था ! अब तू क्या कहना चाहता है !" प्रना के प्रत्युत्तर म तिरस्कार था।

"कुछ नही !"

"दैन, इट इज ऑलराइट ! गुड नाइट !" कहकर प्रज्ञा ने बत्ती आफ कर डाली और दूसरी ओर करवट बदल ली। प्रज्ञा सोच रही थी कि दोनो अब धीरे धीरे एक दूसरे से अलग पडने लगे थे। खुद की आशका सही हो रही थी। उसकी आखें मुदी हुई थी फिर भी वह फीकी हसी। उसके चेहरे पर 'बेडरूम' के सामने की दीवार की गहरी ब्ल्यू रग की 'डिम लाइट' एक विचित्र भाव पैदा कर रही थी। अपनी आखो की पुतलियो की लाल सुख झाई मे वह नित नये रग देखने लगी थी। उसे रह-रह कर लगता था कि शिरीष का स्वभाव रोज बरोज बदलता जा रहा था ! 'डैम इट !' यकायक वह फुसफुसायी और आखें मूदकर सोने का प्रयत्न करने लगी।

शिरीष अब तक दूसरी और करवट लेकर सोया हुआ था, अचानक प्रज्ञा के कहे डैम इट, शब्द को सुनकर चौंक गया उसने प्रज्ञा को झकझोरा।

"क्या है ?"

"बात सुन !"

"क्या कहना है ?" गुस्सेल स्वर मे प्रज्ञा ने कहा।

"कुछ नही !" कह शिरीष ने पुन करवट बदल ली और सोचने लगा। प्रज्ञा यदि इस तरह उसके साथ बात करना चाहती है तो ता वह खुद भी स्वाभिमानी है स्वय अब चलाकर उसके साथ बातचीत नही कर सकता ! वह प्रज्ञा के बदलते जा रहे स्वभाव का कारण खोजने लगा। किसलिए प्रज्ञा का स्वभाव बदल गया था यकायक वह सतर्क हो गया। कही कुछ वह स्वय तो गलत नही कर रहा है न ! वह अपनी कोई भूल खोजने लगा। उसे सतोष हुआ कि उसने ऐसी कोई भूल की न थी।

"शिरीष !"

वह चौंक गया। प्रज्ञा उससे कह रही थी—

"शिरीष, सुन ! मैं अगले रविवार को मिस्टर और मिसिस बसु के साथ कलकत्ता जा रही हू।"

"अच्छा !"

"तुझे पता है ! तेरे ऐसे उडाउ जवाब से मैं नही डरती।"
"तो मुझे किस तरह जवाब देना चाहिए ?"
"तुझे वह कहा से सीखना चाहिए।"
"कहा से ?"
"ओ! शिरीष, तू मुझे 'बार' न कर ! मैंने तुझे कहा न, मुझे रविवार का कलकत्ता जाना है ?"
"मैंने मना किया ?"
"तो मना कर द !"
"प्रज्ञा !" शिरीष के स्वर म जुगुप्सा का भाव था।
"शिरीष, म तेरा स्वभाव जानती हू, तरा मिजाजीपन मुझे मार डालेगा !"
"अच्छा ?"
"तूने मरी बात का जवाब नही दिया ?"
"कलकत्ता म 'इनविटेशन कप' की मीटिंग अटण्ड करनी है तुझे ?"
"तुझे क्या पता नही !'
"ऑल राइट यू म गो, यू बस्ट आफ लक !" कह, करवट बदल कर शिरीष सोने का प्रयत्न करने लगा।

शिरीष को एकाएक रेस म दौडत घाडे दिखने लग। उसने कभी भी सोचा न था कि इस तरह किसी रात का वह खुद रस के घाडा के बार म क्षुब्धनावश सोचेगा ! और नीद म सारी रात उसे रेस का मदान और उसमे रग बिरगी पाखा वाले उडने घोडे सपने म दिखत रह थे।

दूसरी ओर प्रज्ञा भी सारी रात सा सकी न थी। उसे शिरीष के उडाउ जवाब से बडा आघात लगा था। वह सोच रही थी, खुद ही ने काफी तिरछे ढग से शिरीष के समक्ष कलकत्ता रेस 'अटण्ड' करने का सुझाव रखा था। क्या नही उसने स्वय के साथ उसक भी चलने की इच्छा व्यक्त की न थी ! अचानक उसे लगा कि वह खुद ही भूल कर बैठी थी। वास्तव म उसे शिरीष से कहना चाहिए था कि 'हम इनविटेशन कप की रेस म साथ ही चलना है !" वह अब सुबह शिरीष को मना लेगी या सोचने पर उस ठेठ भिनसार नीद आ गई।

प्रज्ञा ने आखें खोली तब दिन के ग्यारह बज चुके थे और शिरीष घर म न था।

शिरीष और प्रज्ञा के बीच एसे सबध थे।

पार्क होटल मे किरमिची रग के वतुला के प्रकाश के विषय मे शिरीष सोच रहा था तभी अचानक उसकी टेबिल पर जे डी आ पहुचा और कहने लगा, "क्या प्यारे, क्या हालचाल हैं ?"

शिरीष जैसे जे डी का ही इतजार कर रहा हो इस तरह बोला, "आ जे डी मैं कभी से तेरा ही इतजार कर रहा था बोल, तेरा कुछ समाधान निकला या नही ?"

'नही, यार, कुछ भी ठिकाना नही चारो ओर से वदनामी बन्दर-घुडकिया देती मुझ पर टूट पडी है !" कहते हुए जे डी के चेहरे पर विषाद की रेखाए छा गइ।

"पर तू डरता क्यो है ! खुद की मर्जी से वह तेरे साथ भाग आई है। तूने कोर्ट म विधिवत विवाह किया है, तुझे अब डर किस चीज का ?'

"तू नही समझता यार !"

"मैं ! तुझे घर वालो का डर है, नही ?

"अब तू समझ घर वाला को समझाना मुश्किल है। बूढा अव्वल दर्जे का जिद्दी है यार किसी भी तरह समझ नही सकता। तभी तो आज मैं ठोकरें खा रहा हू न ? वह चेहरा रुआसा कर बोला।

"हिम्मत न हार दोस्त घर "

'तू घर वाला का नाम मत ले !' शिरीष की बात बीच म काटकर जे डी ने कहा 'जब तक घर की चार दीवारो के बीच तू किसी की छत्र छाया म कुछ भी कर तो तुझे कोई कुछ भी नही कहेगा ! तुझे पता है, घर एक मन्दिर जसा है। उसम सुरक्षा है मदिर म रहकर पुजारी चाहे जो अपकृत्य कर सकता है और सुरक्षित रह सकता है, मदिर के बाहर नही ! क्योकि मन्दिर की दीवारें उसकी रक्षा करती हैं घर के बाहर पैर रखने के बाद मनुष्य नितान्त असुरक्षित हो जाता है !" एक ही

साम मैं बोलते हुए जे डी को अब हाफ चढ गई थी। उसका रुआसा मुह देखकर शिरीष मन ही मन हस पडा उसका नशा अब पिघलने लगा था और उसके मस्तिष्क म मद्धिम नशे की तरगें हिलडुल रही थी ऐसे मे जे डी की फिलॉसफी म वह खिलखिलाकर हसने लगा और सोलन ह्विस्की का एक और 'पाइट' मगाया।

जे डी उसके क्लब का पुराना सदस्य था। उसका पूरा नाम जे डी सेठ था। उसके स्वच्छद और निश्छल स्वभाव के कारण वह शिरीष का खास मित्र बन गया था। दोनो अपने दिल की बातें खुले दिल से एक दूसरे से कहते थे। जे डी सेठ को शिरीष हमेशा 'जे डी' के सक्षिप्त नाम से ही पुकारा करता था। जे डी शिरीष की उलझी हुई गुत्थी के विषय मे अच्छी तरह जानता था फिर भी उसका दिमाग उसके समाधान की दिशा म काम करता न था। पिछले दिन भी उसने शिरीष स कहा था कि वे दोनो मिस्टर और मिसिस विचित्र और तरगी मनास्थिति वाले प्राणी थे बहुत ही समझदारी का दावा करने वाले दोनो व्यक्तियो म अक्ल जरा भी न थी आदि आदि वाक्यो से उसने शिरीष को उपालम्भ दिए थे परन्तु इसी कारण तो शिरीष जे डी पर अधिक खुश रहता था।

सोलन ह्विस्की के दो दो पग लेने के बाद पुन दोना बातो मे लग गये।

"यार शिरीष तू ही बता कि मेरा दोष क्या है? वही मेरे पीछे पडी थी।"

"और तू!! उसके आगे?" शिरीष ने मजाक मे व्यग्य कसा क्योकि शिरीष जे डी की यही बात बहुत दिना से सुनता आ रहा था और उसने जे डी का दोष भी बताया था कि इस तरह उसे विवाह नही करना चाहिए था। जे डी ने अपनी मजबूरी बताई फिर भी शिरीष को जे डी वाली घटना विचित्र और बेहूदी लगती थी।

जे डी सेठ बम्बई के एक प्रख्यात जन परिवार का इकलौता लडका था। अपनी पत्नी के साथ उसकी पटती न थी। उसे लगता था कि वह बेमेल जोडे का शिकार हुआ था अचानक उन्हे सम्पर्क म क्लब मे एक लडकी आई और उस लडकी की सहमति स जे डी न उसका 'अपहरण' कर

लिया था। समाज म इस घटना से तहलका मच गया। उसकी पत्नी न 'टिक टवेन्टी' लेकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था और जे डी के पिता न जे डी को घर से निकाल बाहर किया। पत्नी पर कोर्ट म केस चालू था फिर भी उसने माता पिता के रचवाए अपने बमेल विवाह के कारण, माता पिता के विरुद्ध खुला विद्रोह किया था या जे डी सबके सामन कहता घूमता था।

कभी के शुरू हो चुके कैबरे डांस' की समाप्ति हो गई थी और सन्नाटा धीरे धीरे बिखरने लगा था। जे डी का चेहरा पहल जैसा ही रूआसा था। जे डी को निहायत चुप देखकर शिरीष न जे डी से कहा--

' ज डी अब प्रज्ञा मेरे साथ रह नही सकती !

जे डी ने उसकी बात सुनकर पुन अपनी बात शुरू की उसका नशा आज कुछ तेज था क्योंकि आज वह बहुत ही गभीरता से और गुस्से से नई नई बातें शिरीष को सुना रहा था। वह कह रहा था—

"यार, ब्राह्मण मास और मछली खाते ह ?'

" ! ' शिरीष की समझ म कुछ भी नही आया।

जे डी बोला, "यार कुछ कुछ खाते होंग, पर दूसरों का मास और मछली खाते हुए देखकर नाक भौं सिकोडेंगे और छि छि करेंगे, नहीं?

यस गा अहैड ' शिरीष को उसकी बात म मजा आने लगा था ?

"पर इनम से किसी धूर्त ब्राह्मण के सामने तू यदि कच्चा मास डालेगा तो भी वह खा जायगा !" जे डी भरपूर गुस्से से बोला।

"वह किस तरह ? शिरीष न प्रश्नात्मक दृष्टि स उसके सामन देखा।

"यार, इतना भी नही समझता ! कोई जवान लडकी उसे सौंप दो तो वह उस खा-खा जाएगा।" कहकर जेडी खिलखिलाकर हँस पडा और शिरीष भी अपनी हँसी रोक नहीं सका।

"आज तू ऐसी खास बातें कैसे कर रहा है ?' शिरीष ने जे डी से पूछा।

"इसका कारण है दोस्त ! आज तुझसे मन खोलकर बातें करता हू। मेरे पूवजो का इतिहास सुनेगा तो तू दंग रह जायगा। अरे, मेरे दादा इतने

धार्मिक थे कि मन पूछ बात ! पर वे भक्त थे और मन्दिर की आड़ में उन्होंने बहुत बहुत किया। परन्तु मन्दिर का आश्रय छोड़ा तो थू-थू हो गये और उन्होंने आत्महत्या की !"

गिरीष आश्चर्य से उसके सामने ताक रहा था।

"और मेरे पिता भी मास मछली आदि का देखकर नाक भौं सिकोड़ने वाले और क्रुद्ध होने वाले ब्राह्मणों में से एक हैं उन्होंने भी कच्चा मास चखा है डाम्न ! और यह कहते समय जे डी का चेहरा गुस्से से लालचट हो गया वे भी रंडिया के यहा जाते हैं ऐसा मैंने सुना है ! बोल, अब तू ! मैं तो कोई ऐसा नहीं मेरा क्या दोष बोल !" यो कहकर जे डी रो पड़ा तो गिरीष ने उसे सांत्वना देने के लिए कहा, "तू घबरा मत डाम्न, रो मत ! सब ठीक ठाक हो जायगा। तू 'ईडिपस' जैसा तो दुखी नहीं !"

"ईडिपस !" जे डी को आश्चर्य हुआ।

'हा, ईडिपस ! ग्रीस में थिब्स नाम का एक नगर था। वहा के राजा लाईअस और रानी जोकास्टा का वह पुत्र था। उसने जे डी का मन दूसरी ओर आकर्षित करने नाट्यात्मक ढग से बात की शुरूआत इस तरह की कि जे डी उसे सुनने के लिए बहुत ही आतुर हो गया। तनिक रुककर गिरीष ने कहा, ईडिपस दुनिया का बहुत ही बदनसीब आदमी था। विधाता ने उसकी तकदीर में लिखा था कि वह बड़ा होकर उसके पिता लाईअस को मार डालेगा और अपनी मा जोकास्टा के साथ विवाह करेगा !! और सचमुच ऐसा ही हुआ। ईडिपस का जन्म हुआ। उसके माता पिता ईडिपस की तकदीर के जानकार थे इसलिए उसे नगर से दूर मार डालने के लिए भिजवा दिया। नौकर ने उसे न मारकर अन्य किसी को सौंप दिया। इस तरह ईडिपस बच गया। बड़ा हुआ और अचानक रास्ते में मिलने पर अपने पिता को उसने मार डाला और अपने से अधिक उम्र की जोकास्टा के साथ विवाह कर लिया और चार बच्चों का पिता बना ! बाद में जोकास्टा और ईडिपस को पता चला कि वे दोनो मा-बेटे थे, इसके साथ ही जोकास्टा ने आत्महत्या कर ली और ईडिपस ने अपनी आखें फोड़ डाली। और दुनिया से तिरस्कृत ईडिपस ने शेष जीवन भयकर यातनाओं में और

पीडाओ म बिताया ।" शिरीप ने बात पूरी की तब उसकी आखो म आसू थे ।

जे डी यह देखकर चौंक गया । "शिरीप तू किसलिए रोता है दोस्त ! रोना तो मेरे भाग्य म बदा है !" कह जे डी ने रोनी सूरत बना ली ! जे डी ने फिर कहा, "मेरी बात का तो ठीक, तू प्रज्ञा के हालचाल नही सुनाता प्रज्ञा वापिस कब आयेगी ।"

" " शिरीप अधिक बेचैन होने लगा था ।

'तेरा या प्रज्ञा का दोष नही इसम इस दुनिया मे सारी चीजें भेल-सेल और मिलावट वाली होती हैं दोस्त प्यार म भी मिलावट !" जे डी ने कहा ।

"नही जे डी हमारे प्यार मे "शिरीप की बात बीच म काटकर जे डी गुस्से म बोला, "लोगो ने इन सारी चीजो म भेल मल कर डाला है दोस्त, केवल अडा, मछली और मा का प्यार ही एक एसी चीज है कि जिसम कोई मिलावट नही कर सकता और "

अडा, मछली और मां का प्यार !! शिरीप जे डी की आज की एक-एक बात सुनकर चौंक जाता था 'मानन' की पॉइट पूरी कर दोनो पार्क होटल से बाहर आए उस समय रात के बारह बज चुके थे ।

शिरीप एटोनी और सुरेखा के टूटे हुए सबधो की खोज म निकल पडा था । नौ दस दिन हो चुके थे पर प्रज्ञा की ओर स एक भी पत्र उसे मिला न था वह उदास था जिस पर जे डी ने पिछली रात को उसके समस्त चित्त-तत्र को हिलाकर डाला था इसी म वह अधिक गमगीन था पूरे रास्ते वह एटोनी और सुरेखा के बारे म सोचता अन्यमनस्क चल रहा था । एटोनी का घर पीछे छूट गया । इसकी भी उसे खबर न रही । एटोनी नशे म धुत उस घर म मिला । वह खिलखिलाकर हस रहा था और शिरीप के समक्ष सुरेखा को गालिया बक रहा था । वह शिरीप से कह रहा था कि 'सुरेन्द्र के साथ वह भाग गई । फिर साली का कोई पता नही ? पुन खिलखिलाकर हँसते हुए वह बोला, 'साली का पापकॉर्न

के साथ सूकर का मास खिलाया था इसलिए वह सुरेन्द्र के पास म भी कहा और भाग जाएगी।" एटानी की हालत देखकर शिरीष का मस्तिष्क जड हो गया था।

तब वह एटानी को सात्वना दकर घर से बाहर निकल रहा था तभी एटानी की वद्धा मा एकाएक शिरीष का हाथ पकड कर उससे कहने लगी, 'बटा इस पागल को कुछ समझा ! तू ही इसे समझा सकता है मैं इसका विलाप नहीं देख सकती !" या कहकर वह फफक फफककर रो पडी तो शिरीष एकदम उदास और निढाल हो गया। क्योंकि उसने एटानी की मा की आखो म जो विषाद देखा था उसे देखकर वह सचमुच म डर गया था। वद्धा को क्या इतना दद होना होगा उसका एक हलका आभास कल ही जे डी ने अकस्मिक रूप से द दिया था तभी वह यकायक जे डी के विषय म सोचने लगा कि उसकी मा की हालत भी कुछ ऐसी ही हुई होगी ! अपनी मत मा का चेहरा अचानक उसकी आखो के समक्ष झिल मिलाने लगा एटानी की वृद्ध मा को समझाकर वह 'बार' की ओर के लिए बढ गया और देर रात गय लडखडाते कदमो स घर लौटा।

प्रज्ञा 'इनविटेशन कप' रेस 'अटण्ड' करके दसवें दिन शिरीष के आश्चय के बीच घर लौट आई थी !

उसने प्रज्ञा के सामने एक फीकी मुस्कान फेंकी।

प्रज्ञा ने आखो से चिनगारिया बिखेरी !

दोनो एक पलग पर लेटे !

कोई बोलता बतियाता न था।

औपचारिक बातें भी होती न थी।

वातावरण म मौन धीरे धीरे कराह रहा था जसे ! प्रज्ञा की सूजी हुई आखो मे से टप टप आसू गिर रहे थे ! शिरीष यह देख नहा पा रहा था, क्योकि दोनो एक दूसरे स उलटी दिशाओ म करवट लिय सोये हुए थे ! इसी और इसी तरह काफी समय गुजर चुका था और आखिर आधी रात को प्रज्ञा ने शिरीष को झकझोरा और उसके चेहरे के सामने एकटक

दखा। गिरीष की आखें बन्द थी और उसकी पलका की कोरो और गालो पर आसू बह बह कर सूख गये लगत थे। यह देखकर प्रना चौंकी थी पर कुछ माचकर वह दूसरी ओर करवट लेकर सो गई

और तब, उस रात गिरीष का सारी रात सपने म ईडिप्स, अडा, मछली और अपनी मा का चेहरा ही दिखते रहे थे ठेठ भिनसारे तक। □

सुनहरी मछलियाँ

किशोर जादव

रास्ते के मोड के सामने, लोगों की भीड के करीब से वह निकलता है, औ
एकाएक खडा रह जाता है। स्वय थम गया है इसका भान होते ही, आ
पास के शोरगुल मे, फिर वह आगे बढता है। रास्ते मे कभी जान-पहच
का व्यक्ति मिल जाये, तो उसके साथ उलटी सीधी बातो मे लगने
प्रयत्न करते हुए कुछ असम्बद्ध बोले जाता है। उठ आयी हुई किसी अ
जानी दहशत को मन म दाब देने, वृद्ध की तरह अस्थिरतापूर्वक, सामन
चौडे रास्ते पर के खचाखच वाहनो की सतत गति और कोलाहल का
सरण करता वह आगे सरकता जाता है। और थोडी दरवाजे, दायें हाथ
अगुलियो से निरर्थक चुटकी बजाता, पास के जूने पुराने होटल मे दाखि
होता है। इस समय वहा कोई चहल पहल नही। वर्षों से घिसती अ
कानी पड गई खाली कुर्सियो के कारण, उसके करीब पायो के बीच
जैसे दम घोटता वहा नीचे उलझ रहा हो, ऐसा लगता है। इससे वह
दोनो पैरो को नीचे बराबर रख नही सकता। गीले कपडे से ताज
पोछी हुई टेबिल पर की नमी के कारण, हाथो को कहा रखना है-
चिन्ता मे पड जाता है। इसके बाद हाथो को टेबिल पर ही गिरा
देता है। भीतर से नौकर—होटल का मालिक—चाय का कप रो
की तरह उसके सामने रख जाता है। उसके साथ बोलचाल क
सम्बन्ध नही, क्योकि ऐसी कोई आवश्यकता खडी होती नही। उस

हाटल के बाहर, रास्त पर की एक एक घटना का, छाटी स छोटी हिलन-डुलन को नाट करता हा, इस तरह अनिमप दप्टि से ताकता रहता है। पर वह कुछ भी देखता नही। आधा कप चाय गटगटाकर बाहर निकलता है। और पास के ऊचे मकान की दूसरी मजिल पर, खिडकी का परदा तनिक हिलता है। क्षण भर रुककर वहा उत्कट दप्टि से ताकता रहता है। तब पर्दे की ओट म से चमकती दो आखें, उसकी ओर आतुरता से टिक-टिकी लगाकर दखती रहती हैं। वह खुश होता है। इसके साथ ही उस थकान लगती है ।

और एकाएक याद आया। उसे कुछ विनती करनी थी। किसकी इसका उसे तनिक भी खयाल न था। परन्तु वह बहुत-बहुत भूल जाता था। बहुत दर गये वापिस लौटत हुए, दिन भर की सारी प्रवत्तियो के धीर धीर घिर आते वजन तले आग धक्का खाते हुए जीन की पहली सीढी स ठाकर लेकर, कटहरा पकडन हुए घर म दाखिल होत हुए चारा ओर स वहा की हवा उस घेर लती है तब घटा तक काने म बठकर, अपन हृदय की धुधली धडकन को सुनत समय रात को आसपास की नि शब्दता का उस टगोलता बाल्कनी म अनवरत चक्कर लगाता हो उस समय स्वय बहुत बहुत भूल जाता था। उस खयाल न था। और कुछ विनती करनी थी। एकाएक धक्का लगन पर, वह गिरत गिरते बच गया। देखा तो, मकान का दरवाजा रोक कर खडा हुआ नौकर उसके सामन हस रहा था। उसने, सिर पर चमकते हुए तार की फूल भरतवाली गहरे लाल रग की टोपी पहन रखी थी।

मैं विनायक। मकान मालिक है भीतर ?" कहकर आवेगपूर्वक वह भीतर जाने के लिए मुडा।

"कुछ अन्तर पडने का नही।' नौकर ने उसे बाह पकड कर खाचा।

वह उत्तेजित हा उठा। और इस तरह कुछ दर तक दोना क बीच छीना झपटी चली। ता ऊपर बाल्कनी म से झुककर किसी के कुछ इशारा करन पर नौकर न उसके हाथ की पकड ढीली कर दी। 'यह तो मैं मजाक करता था केवल खी खी' विचित्र तरीके से हँसत हुए, उस वह भीतर ले गया। इसके साथ एकाएक ही विनायक का लगा कि उसक पर म

माच आ गयी थी।] तब सामने से दूसरा नौकर 'ह्विलिंग चेयर' को खीच लाता हुआ दिखाई दिया। उसका चेहरा काहरे के गोले जमा था। ऊपर से उमने ही इशारा किया होगा। विनायक न साचा। और दोना ने उसे 'चेयर' मे व्यवस्थित किया। उसकी पीठ पीछे से, वह टोपीवाला नौकर, चेयर का आगे ठेलन लगा। और या तीना ही, आसपास की लकडी की मडी हुइ दीवारा के बीच होकर, मामने के अधकार छाई काई पर मौन मौन आग बढ रह थे। इम आसार का कहीं भी अत आये ऐमा न था। दुगन्ध के कारण उसने नाक सिकोडा।

'यह तो हुवा ' कुर्सी का हत्था पकडकर चलता दूमरा नौकर बोला। तब बार-बार नीचे फश के साथ रगड खान पर उसके दुखते पैर मे शूल उठती थी। यह देखकर, उसन हिफाजत से पैर का कुर्सी पर रखा दिया। पर उस बचनी हानी थी इससे दोना न रुआसे हाकर कुछ कहना चाहा। तभी अचानक अधबीच स ही तीना ही, मकान के अगले कमरे म दाखिल हुए। यहा कमरे के मध्य भाग का, सामन की खिडकी म स लबी हा आती प्रकाश की लबचौरस छन आवरित कर रही थी। और उसम कही से अदृश्य रूप स पडती, आदमिया की परछाइया, इधर उधर मतन भटका करती थीं। उसन खिडकी क बाहर दृष्टि फेरी। वहा कोई न था। उन परछाइया की, इकधारी, अनयमी आवा जाही देखकर वह तनिक अकुला उठा। हाथ की एक अगुली ऊँची कर, उसन इशारा किया। दूसरा नौकर, तेज कदमा से जाकर सामने की खिडकी बद कर आया। और 'ह्विलिगचेयर आगे धकेली जाती रही। धीरे धीरे वह जस कोई सत्ताधीश बनता जा रहा हो, ऐसा उसे लगा। और मगरूरी म उसन गदन तान ली। तब दाना ही नौकर किसी झक झक में लगे थे। उमन पीछे की आर घूमकर दखा। अगुली पर टापी नचाता नौकर बूढ़ा सा हम रहा था। 'क्या अवदशा हो गयी है!' मन ही-मन वह बडबडाया। और एकाएक उमका भान हुआ। यहा अगाचर रूप स काई जैस समग्र वातावरण का सचालन कर रहा हा, एसा उस लगा। 'मकान मालिक कहा है?' वह चीख उठा।

'हम पता नही भीतर हाग बाहर गये हाग ' व्याकुल हाकर

दोनों नौकर हाँफते हुए बोले।

दूसरे कमरे के सकरे कोने में छोटा सा लैंप जल रहा था। उसके प्रकाश में, नीचे की विशाल टेबिल पर जड़ा हुआ कांच जगमगा रहा था। उस ओर देखते रहना असह्य हो जाने पर उसने पास में नज़र फेर ली। तिपाई पर की कांच की बॉक्स में सुनहरे रंग की दो गुदगुदी मछलियां, आठे टेढ़े बारीक कंपनी फलाती, हल्के हिलोरे भरती तैर रही थीं। क्षण भर वहां वह मुग्ध भाव से ताकता रहा। पर धीरे धीरे उसे लगा कि बाहर हवा में तड़पा करती हों यों वे मछलियां वहां पानी में तैर रही थीं।

'इसे यहां से उठा लो।' रोष में वह जोर से बोला।

इसके साथ ही दोनों नौकर, क्या करें यह न सूझने पर, घबराहट में व्याकुल दशा में दरवाजे के बीच थमकर कुछ घुसपुस करने लगे। 'अब क्या होगा? अब क्या होगा?'

और आगे कुछ भी सोचे उसके पहले विनायक को लगा कि उसके चारों ओर किसी ने जैसे अदृश्य रूप से जबरदस्त घेरा डाल दिया था। उस समय पास के दरवाजे पर के परदे की सलवटें खिंचती दिखीं। उसके पीछे आठ में कदमों की आहट सुनायी दी। और ललकारना हो, इस तरह वह बोलने लगा, 'कौन है वहां?' पर उसकी रुंधती आवाज एकाएक गले में ही दब गयी। मुंह अधर फटा हुआ ही रह गया। उसने हाथ की अंगुलियों से चुटकी बजाने का प्रयत्न किया, पर हाथ पैर ठूंठ हो गये थे। उस घबराहट हो आई। कुछ क्षण इधर उधर घूम सकती दोनों आंखें, सामने आलमारी पर के आइने की ओर एक ही दिशा में मरनी से चिपकी पड़ी रहीं। तब अपने सिर पर उसके ध्यान से बाहर नौकर की रखी हुई वह टोपी आइने में देखते ही उसे झल्लाहट चढ़ आई। और एक झटके के साथ में शरीर को जोर से झकझोर डालना उसने चाहा। पर सारा शरीर जैसे पक्षाघात के कारण बेकार हो गया था। यह देखकर दरवाजे में जड़वत खड़ा हुआ नौकर वहां से दौड़ता आकर टोपी उठा ले गया। विनायक ने डकार भरी। हृदय की धड़कनें अभी तक सुनायी देती थीं, इसका निश्चय कर देखा। और उसे याद आया। उसे कुछ विनती करनी थी। कालपय ने उसकी हड्डी हड्डी का गला डालती, किसी अज्ञात गमगीनी की बात करती

थी। उसके बदले यह तो

'यह किसी काम का नहीं। इसे फेंक दो।' भीतर से आवाज सुनायी दी।

और दोनों नौकरों ने उसे संतुलित रूप में अधर उठाया। मरणांतक प्रयास करके उसने कहना चाहा मैं जीवित हूं। पर उसकी जीभ अकड़ गयी थी। तब लटके हुए उसके औंधे सिर पर, नौकर ने अपनी टोपी को एक हाथ से दबाये रखा। 'इस टोपी में वह कितना गौरवशाली लगता है।' यह सुनकर ऊंची दीवार के सुराख में विनायक के पैरों को दाखिल करने की सिरपच्ची में लगे हुए दूसरे नौकर ने चेहरे पर गांभीर्य संजोये रखकर, सिर धुना। हां ' उसने टोपी उतार ली, और एक धक्के के साथ उसे बाहर धकेला। जैसे उत्तुंग शिखर पर से, कहीं का कहीं अनंत अवकाश के महासागर में वह फिंक गया। उसमें वह केवल बारीक बिंदु बनता जाता, कहीं गहरे और गहरे घूमता गया। और यों उस शून्यता के गर्भ में कोई आकार पाता जाता, कंगन खनकते दो जुड़े हुए हाथों में वह थाम लिया गया। गोद की ऊष्मा में आवरित हुआ। दो होठों के बीच स्तन की चूची को वह चूमने लगा। और वह रो उठा। बंद की हुई, बालसुलभ मुट्ठियों से, सत्वहीन स्तन पर, उसने प्रहार किये। घूंघट के घेरे में से, अपने पर झुके हुए स्नेहसिक्त चेहरे की ओर उसने ऊपर देखा। दो आंखें उन सुनहरे रंग की दो मछलियों की तरह तैर रही थीं। वह चुप हो गया। असहायता में उसने अपनी आंखें मूंद लीं। उस दुग्ध विहीन चूची को केवल वह टुघलाता रहा। और आखिरकार वह हंसा—निरा शुष्क-हास्य। □

एक साधारण पहचान

दिनकर जोशी

"आपको एक पहचान देनी पडेगी।" नया बैंक एकाउंट खुलवाने के लिए आए हुए उन सज्जन को मैं सब कुछ समझा देने के बाद कह देता हूं।

"पहचान ? कैसी पहचान ?"

"बैंक का ऐसा नियम है भाई !" मैं फिर विस्तार से समझाता हूं। "नये खातेदार को चाहिये कि वह बैंक को एक पहचान दे जिसके आधार पर ही बैंक उनके खाते को स्वीकारे।"

"पर साहब ! मैं तो यहां बिलकुल नया नया ही हूं। मैं किसी को नहीं पहचानता। कोई मुझे नहीं पहचानता।"

"यह तो हो नहीं सकता एक यों ही, साधारण सी पहचान भी आपकी किसी के साथ न हो।"

"सचमुच ही नहीं साहब ! यहां मुझे कोई शायद ही पहचानता है।"

क्षणेक सिर हिलाकर वे सज्जन बैठे रहते हैं। फिर उठ खड़े होते हैं। टेबिल पर पड़े कागजों में मैं नजर फिराता हूं। टेलिफोन की घंटी बजने लगती है। रिसीवर उठाता हूं। हल्लो हल्लो कॉलबेल का बटन ट्री ट्री ट्री केबिन के बाहर की चिचियारी अन्दर सुनाई देती है। वे सज्जन धीरे से बाहर चले जाते हैं। केबिन का स्प्रिंग वाला दरवाजा क्षण भर गति करके स्थिर हो जाता है।

टेबिल पर पड़े हुए त्रिपादव लकड़ी के आकार के सामने मैं क्षण भर

ताकता रहता हू । बमुश्किल एक छ इच लबे उस टुकडे पर, मेरी नजर नही पड़े इस तरह मेरा खुद का नाम लिखा हुआ है। नाम मे बाचने जैसा कुछ नही फिर भी दिन म कई बार य अक्षर मेरी नजर के सामने झूल जाते हैं। इस टुकडे की सामने की बाजू पर लिखे हुए अक्षर मुझे दिखाई नही पडते। केबिन म दाखिल होन वाले की दष्टि म सवप्रथम ये अक्षर टकराते है। लिखा है बी आर परतप, ब्राच मनेजर। ये अक्षर यहा लिखे गये उमस पहले यहा दूसरे अक्षर थे। इनके बाद दूसरे अक्षर लिखे जायेंगे। आगतुक की दृष्टि म आत अक्षर बदला करेंगे। मरी स्वय की दष्टि म एक जैसे ही अक्षर मतत रहा करेंगे ! बी आर परतप

एयरकडीशनर मतत चल रहा था और तो भी बी आर परतप ब्राच मैनेजर की हथेलियो म पसीना आ गया। उन्होने दो बार बार अकारण मुटिठया खोली बन्द की। फिर फाइल बन्द करके टलिफोन का डायल घुमाया। लाइन एँगेज आ रही थी। रिसीवर रखकर पैन उठाया। फिर पैन उसके स्टैंड म रखकर बालपैन उठाया। फिर वह भी रख दिया। कोट की जेब म म रूमाल निकालकर ललाट पर फेरा।

—मैं किमी का नही पहचानता, कोई मुझे नही पहचानता

बी आर परतप की आखें यकायक चौडी हो गई।

तब सब कुछ ही भारी भारी लगता था। मन सारे ही दिन खडे बल रहता। कुछ अच्छा लगता न था। जी चाहे ऐसा कुछ भी होता न था। सुबह की डाक म घर से मा का पत्र आता—तुझे यहा से गये तीन महीने हो गये। अब यहा उधार कितने दिन चल ? बडी दीदी के सुसराल वाले उतावले हुए है तरी नौकरी की यदि कुछ तजवीज न लगी हो ता

तो

फिर कुछ सूझना नही।

दोपहर के समय किमी चिटठी चपाठी के सहारे एकाध आफिस की सीढिया चढना।

सीढिया चढ्त समय लगता कि इस बार अवश्य कुछ मेल बठ

जायगा। पर मेल नहीं बठता। चिट्ठी पढकर व भाई मातमी चहरा बनाकर वह देते—"सॉरी। अभी धधा ही कहा है ? हम तो इस महीन स दा आदमिया की कमी करने वाल है

मैं अपने आप कमी म आ जाता।

शाम हाते तक भटक-भटक कर लाथ हो जाता। जस ही घर म पैर रखता कि चाची की आखें मुझ पर आ ठहरती—फिर जीभ कही भी ठहर बिना गति करने लगती। छाटे-बडे पाच बच्चा का चाची बारी-बारी म घुडक-घुडककर झापट मारती मुआ ! अभी तक पायली आट की राटिया वलनी पडेंगी। तुम्ह ता खाने क बाद भी ढाइ सेर ऊपरस खानेका चाहिए, वह मैं कहा स '

बेचन मन पिस जाता।

बमुश्किल बीस-पच्चीस की तब उम्र रही हागी। मट्रिक करने के बाद दा एक वप गाव म रोटिया कमाकर खाने के प्रयत्न म सफल न हुआ तब मा ने खुद चाचा को कहा था—' बीनू का तुम्हारे साथ बम्बई ल जाआ। कही बचारे को लगा दो भाई ! यहा ता कही भी काम लगे ऐसा अब दिखता नही।"

चाचा ना नही कह सके। बीनू बम्बई आ गया। लाइन पर चढने के लिये। पटरी बैठाने क लिये।

पर लाइन मिलती न थी। पटरी बठती न थी।

चाचा सुबह से रात तक मूलजी जेठा मार्केट की 'कुजगलियो म गुमास्तागीरी किया करते। रात को थके हार पूछ लेत—क्या, आज कुछ मल बैठा ?' मैं चुप रहता। चाचा समझ जात। फिर चाची बालने लगती—यह अनाज वाले का बिल किराये वाला आया था इस महीन बच्चों के कपडे सिलवाने मरी कमर का दद बढता जा रहा है काम हाता नही। डॉक्टर क पास जाने के लिय पसे "

चाचा मौन मौन आखें मूदकर नीद का खाजने लगते। मैं करवट बदलकर दीवार के उखडे हुए प्लास्टर को दखा करता।

रात बीत जाती। सुबह जल्दी नीचे उतरकर फुटपाथ पर आता। 'बनासकाठा हयर कटिंग सलून' के अग्रभाग पर कादर चाचा बठे तयार

मिल जाते। इन दिना मेरी उनके साथ ठीक जम गई थी। तेजी से गति करते जमाने के साथ कादर चाचा की यह 'बनामकाठा हयर कटिंग सैलून' ताल नही मिला सकी और इसीलिए ही शायद चाचा सुबह के समय भी उदासिया खाते उनकी टूटी हुई कुर्सी पर पचास पैसे की कीमत का अखबार पडा रहता। मुसकुराकर चाचा के पास स वह मागकर मैं देखने लगता। बीच के पन्ने पर नौकरी खाली है—विज्ञापन छपते उसके अक्षर अक्षर ध्यान से देखने लगता। कादर चाचा कभी किसी ग्राहक के साथ बाता म लग जाते—"अब इस पाकिस्तान के साथ ठनेगी, हा! मेरे बेटे इस अमरीका वाले भी कैसा फितूर करते हैं, हैं न। इस साल यदि मौसम के पिछले समय की एक बरसात आ जाय "

'नौकरी खाली है—इसके सिवाय अखबार म अन्य भी बहुत छपता है इसकी उन दिनो म मुझे खबर न थी। पाकिस्तान! अमरिका!! बरसात!!!

फिर नये-नये बॉक्स नबर—पते पढकर ऊपर जाता। ऊपर दूसरी मजिल पर जजरित चाल मे जी कुलबुलाने लगता। चाचा मूलजी जेठा मार्केट म जाते। चाची बच्चो के कामो मे लग जाती। बच्चे स्कूल की तयारी म लग जाते। चाल मे दूसरी मजिल पर तीन चार परिवार रहते थे। कॉनर के कमरे मे से शिवशकर मास्टर 'यदा यदा धमस्य बुलद आवाज मे ललकारते। फिर ट्यूशन म लग जाते। शायद ही किसी के साथ बात करते नजर आते। दाहिनी आर के कमरे म एक वयोवद्ध दपती अकेले ही रहते थे। एक लडका था शादी करके सुसराल वाला के दिये हुए ब्लाक म रहने के लिए चला गया था। शायद इस शत पर ही विवाह किया हो। कौन जाने? पता नही। कभी कभार माता पिता से मिलने आता है ऐसा एकाध बार चाचा ने कहा था। सामने की आर ठेठ नल के पास 'जोटो रूम वाले दामाभाई दवावाले रहते। दामाभाई दवाबाजार मे काम करते थे। दूसरी मजिल पर कोई बीमार बीमार होता तो मुफ्त दवा ला देते। फ्री मेडिसन—नाट फार सल के लेबलवाली उपयोगी शीशिया भले आदमी थे। चाचा, दामाभाई की सराहना करते इसलिए वे अवश्य भले होने चाहिए। दामाभाई का बडा लडका दूसरे शहर म

किसी होस्टल मे रहकर पढता था। घर मे दामाभाई की पत्नी भी थी।

एक बार भारी घोटाला हो गया था। बम्बई आए अभी मुश्किल से आठ दस दिन ही हुए होंग। दामाभाई की पत्नी वीणाबहन रोज सुबह लंबी चोटी मे फूल खासती। सारी चाल मे यही, एकमात्र ध्यान आकर्षित करे ऐसी क्रिया थी। सहज नवगोल चेहरा, पतली इकहरी देह, सफेद साडी पहनती इसके सिवा कोई आभूषण न दिखता। घर मे वीणाबहन के अलावा उनकी ही समवयस्क लगती एक और स्त्री

नही-नही लडकी। मुश्किल से बीस-बाईस की उम्र लगती थी।

एक बार मैं चाची से पूछ बैठा था "चाची, यह वीणाबहन की छोटी बहन यही पर ही रहती है ?"

चाची हस पडी। चाचा भी हसे। फिर धीरे से बोले, "यह तो दामाभाई की पहले वाली पत्नी की लडकी है। दामाभाई अभी दो वर्ष पहले ही विधुर हुए हैं। पिछले वर्ष ही इन्होंने वीणाबहन के साथ दूसरा घर बसाया है "

और तब बेचैन मन और भी अधिक बेचैन हो गया। सब कुछ बहुत भारी भारी लगने लगा था।

एक दिन यह भार बढ गया। सहा नही जा सके इतना असह्य। सुबह, दोपहर, शाम, रात सब छिन्न भिन्न हुआ जाता था। अकेला—एकाकी भटका करता था। सारे ही शहर मे कोई पहचान न थी। 'बनास काठा हेयर कटिंग सैलून' वाले कोदर चाचा के सिवा किसी के साथ अभी तक बोल चाल का व्यवहार भी बढा न था। हां, वीणाबहन के लंबे बालो मे रोज सुबह लगाये जाने वाले सफेद फूल के यदि वाणी होती तो

कभी कभी सकरी चाल मे या आते जाते सीढियो या जीने पर वीणाबहन मिल जाती। थोडा मुसकुराती। फिर नीचे देखकर आगे बढ जाती। कोई देखने वाला नही इसका निश्चय कर लेने के बाद फिर मैं गर्दन घुमाकर वीणाबहन की पीठ की ओर ताक लेता। लंबे चमकते बाल और सफेद फूल

पर यह भी पूरा होने को आया था। भारी मन से निर्णय करके रात मे चाचा से कहा, "अब यहा मन नही लगता। नौकरी या कुछ मेल

बैठता लगता नही। गाव मे वापिस चला जाऊ। वहा जैसे-तैसे रोटिया निकाल लूगा।"

चाची कुछ भी बोली नही। चाचा ने भी स्पष्ट कुछ नही कहा।

फिर सब थम गया। रात गाढी हो गई। दीवार की चितकबरी पपडिया बहुत बेडौल लगती थी। रात भर उन पपडियो के सामने देखता रहा। आखें मुदती ही न थी। सुबह जल्दी उठकर नीचे पहुच गया। 'बनासकाठा हेयर कटिंग सैलून' के अग्रभाग पर बैठकर कोदर चाचा के साथ आधा कप चाय पी। अखबार पर नजर फेरी। ऊपर वापिस गया तब जीने के मोड के पास वीणाबहन मिली। वही सफेद साडी। चमकते बाल , लबे, पतले होठो का स्मित और और पहली ही बार लगा कि उनकी आखें भी

वीणाबहन हसी। फिर एकाएक मुझे भी याद आया कि शिष्टतावश मुझे भी हसना चाहिये। हस दिया। वीणाबहन चली गयी। मैंने गरदन घुमायी। वही सफेद फूल

दोपहर को वापिस लौटा तो कमरे का दरवाजा बद था। चाची कहीं बाहर गयी थी। दामाभाई का दरवाजा अधखुला था। ताले की चाबी शायद चाची वहा रख गई हो, इस ख्याल से मैंने अधखुले दरवाजे पर दस्तक दी। दरवाजा पूरा खुल गया। भीतर वीणाबहन दरवाजे की ओर पीठ करके पलग पर सोई थी। आवाज होते ही जल्दी से वह उठ बैठी। साडी का पल्ला ठीक करती हसी। बोली, 'ओह! आप? मैं तो घबरा गई। कहते हुए उन्होंने अपने सिर पर हाथ फेर कर फूल ठीक किया।

"चाची चाबी दे गयी है?' मैंने पूछा।

वीणाबहन खडी होकर दरवाजे के पास आयी। "चाची बाहर गयी है?' फिर हसकर बोली, "आसपास ही कही होगी। अभी तो यही थी। मेरे साथ बातें की। कह रही थी " वीणा बहन चुप होकर खडी रहीं। आसपास देखकर बोली, "आओ । यहा बैठो।"

"आओ। यहा बैठो।" बहुत दिनो के बाद ये शब्द कानो म पडे थे। 'आओ।' कितने महीने हो गये इन दो अक्षरो को सुने हुए।

"चाची कहती थी " वीणाबहन धीरे से बोली। फिर आसपास

दगा। साडी का पल्ला अगुली पर लपेटा। दीवार घडी की टिक टिक की आवाज के सिवाय सब शात था। "आप आजकल मे यहा से गाव जाने वाले हैं ?"

"हा "

"क्या ?"

"रुकने का मन नही होता।"

"क्यो ?'

"क्याकि क्योकि यहा 'आओ' जैसे दो अक्षर भी महीनो के बाद काना म पडत हैं। काम धधे का कुछ मेल खाता नही "

"मेल नही ही खायेगा यह कैसे मान लिया है ?"

"क्याकि मैं यहा किसी को नही पहचानता। कोई मुझे नही पहचानता। कही भी मन नही लगता।"

वीणाबहन समीप आयी। मैं स्तब्ध रह गया। कुछ सूझता ही न था। बहुत समय बाद उत्तेजना शब्द का स्वरूप स्पष्टत प्रकट हो रहा था। मुझे याद है—मैं काप रहा था। वीणाबहन ने हाथ लम्बाकर मेरे कधे पर रखा।

"आपकी तबीयत ठीक नही लगती वीनूभाई। यहा बैठो।" उन्होने तनिक धकियाकर मुझे कुर्सी पर बैठाया। चुपचाप पानी का गिलास लाकर रखा। मैं एक सास मे पानी पी गया।

"वीनूभाई। आप मुझे नही पहचानते ?" वीणाबहन ने चेहरा स्थिर करके, मुझे ताकते हुये कहा। उस लम्बी बधक नजर के सामने देखते रहना मेरे लिये मुश्किल हो गया। मैं एक शब्द भी न बोल सका था।

"देखो, आप मुझे पहचानते ही हो। मैं भी आपको पहचानती हू। फिर यह कसे कहा जा सकता है कि यहा कोई आपको नही पहचानता। आप किसी को नही जानते ?'

मेरी लाल आखा मे एकाएक सफेदी उभर आयी। अगो मे फली हुई कपकपी अभी तक थमी न थी। वह एकाएक बढ गई। वीणाबहन पास आयी। धीरे-से मेरा कापता हाथ पकडा। बोली, "देखो, या निराश मत होओ। थोडा और अधिक प्रयत्न करो। सब ठीक हो जायेगा।' फिर पाचे

पर अगुलिया फिराते हुये कान म कहनी हा इस तरह आगे कहा, "यो हनाग होकर चले जाओग। यह मुझे तो अच्छा नही लगेगा।"

बस।

वीणाबहन भीतर के कमरे मे चली गई थी। चाची आ गयी। चाबी मिल गयी। कमरा खुल गया।

उस रात चाचा से कहा "एकाध जगह पर नौकरी मिल जाय एसी सभावना है। कुछेक दिन रुककर यह भी प्रयत्न कर लू।'

चाचा ने चाची की ओर देखे बिना धीरे से कह दिया, "जैसी तेरी इच्छा।"

दूसरे ही सप्ताह चार सौ रुपये वेतन पर शहर की एक बक मे एक एप्रेंटिस क्लक क पद पर मेरी नियुक्ति हो गई।।

वप बीत गय हैं इस बात का तो। वीनू अब वीनू नही मिसेज—वी आर परतप है। एप्रेंटिस क्लक नही—ब्राच मनेजर है। अब 'बनासकाठा हेयर कटिंग सलून' के कोटर चाचा के साथ आधा कप चाय नही पीता। 'टी सैंटर' की एयरकडीशड दीवारा क बीच बठकर एस्प्रेसो कॉफी के घूट गले के नीचे उतारता है। वर्षों पहले किसी से मागी हुई चिट्ठी चपाटी लेकर घूमता वीनू अब जरूरतमदो का सिफारिशें लिख देता है।

सब कुछ बदल गया है। वर्षो पहले वाली चाचा की वह जजरित चाल कभी की गिर गई है। उस जगह पर छ मजिल की ऊची आधुनिक इमारत खडी है। दो-दो लिफ्टें निरतर उतरती चढती रहती है। चाचा चाची अब इस दुनिया मे नही। उन शिवशकरभाई की बुलद आवाज— यदा यदा धमस्य शायद हवा म कही चक्कर लगा रही हागी।

कौन जाने। दामाभाई वीणावहन व चमकते बाल और सफेद फूल

कौन जाने।। कुछ भी खबर नही। काम के चक्कर में सारा ही कही अलोप हो गया है।

दृष्टि के सामने टेबिल पर लकडी का त्रिपारव टुकडा पडा है। उसमे उभरकर आये हुये सफेद अक्षर—वी आर परतप

टेलिफोन की घटी की आवाज कॉलबेल के बटन पर दबती अगुली लाल भूरी-स्याही से लिखे जाते पत्र नयी-नकार फाइलें चैक

वी आर परतप इन सबके बीच खो जाते हैं। □